

समरथ



नवंबर-दिसंबर 2012 ♦ नई दिल्ली



नाहि तो जनम नसाई

16 दिसंबर के बाद से न केवल दिल्ली में बल्कि पूरे देश में महिलाओं की सुरक्षा और उनकी अस्मिता को लेकर एक लंबी बहस चल रही है। 16 दिसंबर एक काला दिवस बन चुका है। 16 दिसंबर की शाम दिल्ली में चलती बस के अंदर जिस बर्बरता का प्रदर्शन हुआ वो शायद अपने किस्म का अकेला उदाहरण है। 23 वर्षीय छात्रा के साथ जो कुछ उस चलती बस में हुआ उसे आम लोग सामूहिक बलात्कार या गैंगरेप कहते हैं। हम इसे सामूहिक बलात्कार तक सीमित रखकर नहीं देख सकते। बलात्कार करते हैं पुरुष महिलाओं के साथ। हम जिस घिनौने समाज का हिस्सा हैं वहां कोई दिन ऐसा नहीं गुज़रता कि इस देश का कोई भी शहर बलात्कार की कोई न कोई घटना न दे। अब तो शायद हमारे कान और आंख आदी बन चुके हैं इस तरह की खबरों के। दामिनी के साथ जो कुछ भी हुआ वो केवल बलात्कार तक सीमित नहीं था। उस पर विस्तार से लिखना न तो हमारे बस में है और न ही पाठक में हिम्मत होगी उसको पढ़ने की। बलात्कारी एक औरत के जिस्म को कैसे रेज़ा-रेज़ा कर सकते हैं उसकी ऐसी बर्बर मिसाल हमने पहले कभी नहीं सुनी। बलात्कार से बेहोश लड़की के साथ फिर बलात्कार। बलात्कार के बाद उसके शरीर में लोहे की छड़ें उतार देना, उसके शरीर से उसके अंग बाहर खींच लेना क्या मात्र बलात्कार है?

अजीब दोगले समाज का हिस्सा हैं हम। देवी बनाकर पूजते हैं। शक्ति का प्रतीक मानते हैं। शरावाली जैसे शब्द इस्तेमाल करते हैं और जब उस देवी का, उस शक्ति का जिस्म हमें नज़र आता है तो न हमें कोई शक्ति दिखायी देती है और न कोई देवी। दिखाई देती है एक औरत जिसके जिस्म को नोचा जा सकता है और मर्द का पौरुष आकर सिमट जाता है औरत के जिस्म के कुछ हिस्सों पर।

दामिनी के नाम

■ डॉ. खुशीद अनवर

यह देवी है तो पत्थर है यह इंसां है तो एक शय है
इसे पूजो अगर बुत है इसे नोचो जो यह शय है
यह बस एक जिस्म है और कुछ नहीं है
कोई बेटी किसी की माँ नहीं है
यह सब बातें पुरानी हो चुकी हैं
फसाना हैं कहानी हो चुकी है
सजाओ सेज पर और फिर जला दो
बुझाओ प्यास फिर हस्ती मिटा दो

यह खेती है तुम्हारी और क्या है
निकालो हल इसे अब जोत डालो
उठो और इसको अब पैमाल कर दो
यह धरती अब किसी की माँ नहीं है
यह औरत है कि इसमें जाँ नहीं है
यह बस सेजों कि शय है क्यों झिझकना
यह औरत है तो कैसी शर्म करना
यह मरियम है तो क्या औरत ही तो है
यह सीता है तो क्या औरत ही तो है
इसी का नाम ही तो दामिनी है
बढ़ो आगे बढ़ो बस जिस्म है यह

बलात्कार : शब्दकोशों की कंगाली

■ डॉ. खुशीद अनवर

यह शहीद दामिनी के लिए लिखा गया एक और शोक-सन्देश या उसके हित के लिए लिया गया एक अन्य संकल्पमात्र नहीं है। यह दस्तावेज़ दक्षिण एशिया की सभी दामिनियों के बारे में सोचता है। विशेषतः बलात्कार के सवाल पर और अन्य प्रकार के यौन उत्पीड़न के सम्बन्ध में। प्रश्न यह है कि इन घटनाओं पर हमारा समाज कैसी प्रतिक्रिया देता है। यहां प्रश्न है पौरुष और शक्ति के प्रदर्शन का और महिलाओं के निरंतर दमन का। लेकिन दामिनी के मामले ने सम्पूर्ण दक्षिण एशिया को विचलित किया है और उसकी शहादत ने इन प्रश्नों को विमर्श की मुख्य धारा से जोड़ दिया है।

घटनाओं का क्रम : 16 दिसंबर रविवार को रात के 9:15 बजे राम सिंह और उसके साथियों द्वारा द्वारिका तक पहुँचाने का प्रस्ताव दिए जाने पर दक्षिण दिल्ली के मुनीरका से दामिनी और उसके पुरुष साथी दोनों बस पर चढ़े। हालाँकि, बस में मौजूद पुरुष, पीड़िता के पुरुष मित्र से यह जवाब मांग रहे थे कि वह इतनी रात गए दामिनी के साथ क्यों है? लेकिन जब उसके पुरुष मित्र ने जानबूझ कर की जा रही इस छींटाकशी का जवाब दिया तो उन लोगों ने उसे बुरी तरह पीटा। इन सबके बीच हस्तक्षेप करना दामिनी को महंगा पड़ा क्योंकि इसके बाद उन व्यक्तियों ने एक-एक करके उसका बलात्कार किया। इतना ही नहीं आरोपियों में से एक ने जैक का एक हिस्सा, जोकि गाड़ी के पहिये बदलने के काम आता है, लेकर उसकी योनि में डाल दिया। जब इस पर भी संतोष नहीं हुआ तो उन्होंने उसकी आंते भी खींच डालीं।

इस भयानक कुकर्म के बाद बस में सवार व्यक्तियों ने उन दोनों को बस से बाहर फेंक दिया और वे दोनों कई घंटों तक बगैर कपड़ों के सड़क पर पड़े रहे जबकि वहां से गुजरने वालों ने उनकी कोई मदद नहीं की। फिर कुछ लोगों ने हिम्मत जुटाकर अपने गर्म कपड़े उन्हें दिए और पुलिस को सूचित किया।

पहले दिल्ली और फिर सिंगापुर में ज़िंदगी से संघर्ष

करते हुए दामिनी 29 दिसंबर को चल बसी।

क्या दामिनी के साथ जो हुआ वह सिर्फ बलात्कार और हत्या का मामला था? क्या उसके शरीर पर जैक का जो इस्तेमाल किया गया वह बलात्कार के लिए था? हम इसे क्या कहेंगे? शब्द कम पड़ रहे हैं इसकी भर्त्सना को और शब्दकोष मौन हैं। सिर्फ जबरन पेनेट्रेट किये जाना ही बलात्कार नहीं है। बलात्कार तो शब्दों और बातों से किया जाता है। बलात्कार नज़रों से होता है। बलात्कार तब होता है जब 'मर्द' किसी औरत को देखने के बाद उसके साथ सेक्स की कल्पना करने लगते हैं। किसी भी स्त्री को देखने के बाद और उसके साथ हमबिस्तर होने का खयाल करते हुए आखिर ये 'पुरुष' क्या कर रहे होते हैं? जबकि स्त्री को इसका कोई इल्म नहीं होता। हां, ऐसा करके वह पुरुष उस स्त्री का बलात्कार ही करता है। छेड़छाड़, यौन उत्पीड़न और महिलाओं में बेहिसाब लज्जा अब बीते समय की बातें हैं। यह पुरुषों द्वारा गढ़े गए शब्द हैं जिससे उनके अपराध की गंभीरता कम हो सके। कानून इन शब्दों-वाक्यों का समर्थन करता है क्योंकि कानून-निर्माता आमतौर पर 'पुरुष' ही होते हैं। दंड की श्रेणी से भी इसका गहरा सम्बन्ध है।

आज एक स्त्री पूछ सकती है कि क्या जब बहुत छोटी उम्र में दूध वाले ने उसकी जाँघों के बीच हाथ डाला था तो वह बलात्कार था? जब वह एक बच्ची थी और उसके रिश्तेदार ने उसकी छाती को महसूस किया था, क्या वह बलात्कार था? जब उसके किसी चाचा-ताऊ ने उसे अपनी गोद में बैठाया था और उसने उनकी रेंगती हुई उँगलियों को अपने जिस्म पर महसूस किया था, क्या वह बलात्कार था? जब उसे पढ़ाने वाला मास्टर बार-बार उसकी जाँघों पर हाथ रखता था, क्या वह बलात्कार था?

पिछले कुछ दिनों में शीर्ष के नेताओं से लेकर पुलिस अधिकारियों ने और अन्य कई लोगों ने एक स्वर में कहा कि महिलाएं छोटे कपड़े पहनकर बलात्कार को बुलावा देती हैं। महिलाओं के राष्ट्रीय कमीशन की कर्ताधर्ता ममता शर्मा से अपेक्षा की जाती है कि वे औरतों की आवाज़ बनेंगी।

ज़रा देखिये उनका क्या कहना है '(उन्हें) अपने पहनावे को लेकर सावधान होना चाहिए।' दिल्ली की मुख्यमंत्री शीला दीक्षित ने महिलाओं को सलाह दी है कि वे घर से बाहर निकलते वक्त उचित ढंग के कपड़े पहनें। जुलाई में, दिसपुर में एक बार से बाहर निकलने पर एक लड़की के साथ हुई सामूहिक छेड़छाड़ के कमरे में कैद किये जाने के बाद कांग्रेस के नेता विजय वर्गीय टिप्पणी करते हैं, असम भी इसी राह पर चल रहा था... 'महिलाएं भड़काऊ कपड़े पहनती हैं जोकि समाज को विचलन की ओर बढ़ा रहा है... फैशन, जीवनशैली और व्यवहार भारतीय संस्कृति के अनुरूप होने चाहिए।'

लिकर उद्योगपति, जिसके सालाना कैलेण्डर में हर पेज पर बिकनी पहनने वाली औरतों की तस्वीरें होती हैं, वह भी महिलाओं के पहनावे पर सवाल उठाता है और इसे बलात्कार के लिए ज़िम्मेदार ठहराता है।

इस प्रकार की टिप्पणियां बलात्कार का समूचा दोष स्त्रियों पर डालती हैं। 'यदि तुम ऐसे कपड़े पहनोगी, तुम बलात्कार को बुलावा दोगी।' क्या यह बलात्कार नामक कुकर्म का प्रत्यक्ष समर्थन नहीं है?

10 जनवरी को एक ढाई साल की बच्ची का बलात्कार किया गया। 16 जनवरी को एक सात वर्षीय बच्ची का बलात्कार किया गया। इन बच्चियों को किस प्रकार के उचित कपड़े पहनने चाहिए थे?

हम रोज़ ही पुरुषों को बिना कमीज के सड़कों पर देखते हैं। क्या इससे कोई महिला उत्तेजित हो जाती है? लेकिन क्लीवेज़ या टांगों के ज़रा भर दिखने से बलात्कार की घटनाएं हो जाती हैं। आखिर कोई भी महिला सड़क पर निर्वस्त्र तो नहीं घूमती।

एक और प्रश्न जो लोग बार-बार उठाते रहते हैं। जो लोग स्त्रियों को उचित कपड़े पहनने और खुद को ढांक कर रखने की सलाह देते हैं उनमें से अधिकांश औरतें ही हैं। क्या मासूम सवाल है? जैसे उन्हें खुद नहीं पता कि कोई भी स्त्री यह करती है तो उसके पीछे क्या कारण हैं। यदि कोई स्त्री पितृसत्तात्मक विचारधारा रखती है तो इसके लिए कौन जिम्मेदार है? सदियों से पुरुषों ने मिलकर स्त्री की मानसिकता को ऐसा रूप दिया है जो उनकी इच्छाओं और सुविधा के अनुकूल हो। स्त्रियों में यह विचार प्रक्रिया आखिर किसने डाली कि हर बात उनके विरोध में जाती है लेकिन इसके बावजूद भी वे इस मानसिकता की अभिभावक

और संरक्षक बनी रहती हैं? इस हद तक कि वे सती प्रथा का भी समर्थन करती हैं। लोकसभा में विपक्ष की नेता जो स्वयं एक महिला हैं, यह उपदेश देती हैं कि एक विधवा को अपना जीवन किस तरह व्यतीत करना चाहिए? यह कैसे संभव हो सका? परिवार, आस-पड़ोस, खिलौने, कपड़े, मुहावरे, कहानियां आदि सभी उसे बचपन से यही सिखाते हैं कि वह अपना व्यवहार वैसा ही रखे जैसा पुरुष चाहता हो और इस तरह पितृसत्तात्मक सोच को बल मिलता रहा। इन सबसे बढ़कर इन पुरुष निर्मित मान्यताओं पर धर्म के नाम की मोहर लगा लो और बस आपको औरतों से अपने अनुकूल आचरण करवाने का लाइसेंस मिल गया। अब अपने हाथ गंदे क्यों करना! तुम्हारा काम तो पीड़ित वर्ग खुद कर रहा है। और फिर इसके बाद छत पर खड़े होकर चीखो कि औरतें खुद औरतों की दुश्मन हैं।

जब हम मर्द, अपना पौरुष सिद्ध करते हैं, तो यह हमारे ज्ञान और कर्मों से प्रतिबिंबित होता है। यह हमारे शरीर और कुकर्मों से भी प्रतिबिंबित होता है। आज के समाज में जहाँ स्त्रियाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लड़कों और पुरुषों को मीलों पीछे छोड़ रही हैं यह पुरुष 'मर्द' में बदल जाता है और समाज और मानवता के चेहरे पर कालिख पोत देता है। जब स्कूल और कॉलेज के परिणाम घोषित होते हैं तो पिता गर्व महसूस करता है कि उसकी बेटी ने सर्वोत्तम प्रदर्शन किया और वही पिता दूसरे अवसर पर खुद एक 'मर्द' में तब्दील हो जाता है और कोई भी अज्ञात या ज्ञात स्त्री/लड़की उसकी भूख का शिकार बनती है।

अपना पौरुष सिद्ध करने के लिए, मर्द को सिर्फ एक ही जगह मिलती है और वह है औरत की जांघों के बीच... जहाँ वह अपने पशु बल का प्रयोग करता है... उन्ही जांघों के बीच वह अपनी पाशविक शक्ति का प्रयोग करता है जहाँ से निकलकर वह उगते सूरज को देख सका था। और ऐसे हर कुकर्म के लिए हम एक ही शब्द का इस्तेमाल करते हैं... बलात्कार... नहीं... अब हमें इन कुकर्मों की व्याख्या और परिभाषा के लिए एक पूरा शब्दकोष बनाना होगा। अनगिनत कमरों में औरतें रोज बलात्कार का शिकार हो रही हैं... जहाँ मर्द अपनी बीवियों का बलात्कार कर रहे हैं... क्योंकि वे सम्भोग के लिए राजी नहीं हैं। और असहाय स्त्री भावशून्य होकर बगैर हिले-डुले उसके साथ सोती है। वह अंधेरे में कमरे की छत को ताकती है। और अब

कमरे की दीवारें 'पति' के बुलंद खर्राटों से गूंजने लगती हैं जबकि बेचारी 'पत्नी' एक शून्य में खो जाने के बाद ख्वाबों में ही चैन पाती है। अगली सुबह वही बलात्कारी बेशर्मी से पुरुष होने का अधिकार जताता है... "क्या चाय नाश्ता तैयार है?" और बिना किसी पश्चाताप के चल देता है। आखिरकार वह उसकी 'पत्नी' है और वह उसका 'मालिक' है! यह उसकी ज़मीन है और उसे अपनी मर्जी से कभी भी इस ज़मीन को जोतने का अधिकार है। यह आदमी अपना सारा जीवन 'आत्मसम्मान' से बिताता है वह स्वयं को लेशमात्र दोषी नहीं मानता। कोई उसे बलात्कारी कहता भी नहीं। एक के बाद एक बच्चे पैदा करने के बाद भी आज अरबों महिलाएं नहीं जानती कि सेक्स से प्राप्त होने वाला आनंद कैसा होता है। वो इन बच्चों को अपनी पूरी कृपत और प्यार से पालती हैं। इन बच्चों में से कई 'मर्द' होते हैं और आगे चलकर कहीं और अपनी मर्दानगी साबित करते हैं।

और गैंग रेप!!! एक पुरुष के रूप में तो हमें शर्मसार होना चाहिए। पुरुषों को एक प्रश्न अपने आप से बार-बार पूछना चाहिए। ये 'मर्द' जब बारी-बारी से किसी का बलात्कार करते हैं तो भला इन्हें 'इरेक्शन' कैसे होता है? एक व्यक्ति दूसरे के खत्म कर लेने का इंतज़ार करता है। आखिर कैसे उन्हें इरेक्शन होता है जब लोगों की भीड़ तालियाँ पीटते हुए बलात्कार देखती है, जैसा कि 2002 में गुजरात में हुआ था।

नहीं... तेज़ रफ्तार से भागती कारों और बसों में जो होता है वह सिर्फ बलात्कार नहीं है। या जो सड़क के किसी सुनसान कोने में होता है वह भी सिर्फ बलात्कार नहीं है। इस मामले में हमारी बोली-भाषा और हमारे शब्दकोश आज भी बहुत गरीब हैं। हम अपनी जरूरतों के मुताबिक शब्दों का आविष्कार करते हैं। हमारे यहाँ रंडी, वेश्या, जिस्म बेचने वाली आदि, जैसे कई शब्द हैं जिनका प्रयोग स्त्रियों के लिए किया जाता है, लेकिन क्या उन लोगों के लिए एक भी शब्द है हमारे पास जो इन इंसानी जिस्मों के खरीदार होते हैं?

हम उनके लिए जानवर, राक्षस, जंगली जैसे शब्दों का इस्तेमाल करते हैं लेकिन वास्तव में इन शब्दों का इस्तेमाल करके हम जानवरों का अपमान करते हैं। यह इस पृथ्वी पर पायी जाने वाली एक बिलकुल अलग प्रजाति है जिसका अभी नामकरण होना है। आखिरकार भाषा की भी अपनी

सीमाएं हैं। भाषा आज भी विकसित हो रही है। नए शब्द आयेंगे और तब इस प्रजाति का नामकरण होगा। और फिर हम इनके लिए अलग चिड़ियाघर भी बनायेंगे। इस प्रजाति को घेराव के अन्दर रखा जायेगा और वहां पर एक साइनबोर्ड लगा होगा जो कहेगा कि "जानवरों को परेशान न करें।" इस पर यह भी लिखा होगा कि "इन पर थूके बगैर यहाँ से आगे न जाएँ"

कौन कहता है कि दामिनी मर चुकी है। उस चिता की आग जिस पर दामिनी को रखा गया था हमारे खून में दौड़ती रहेगी। वह आग हमारे सीनों में धधकेगी। हमारी आंखें उस ज्वाला से भरी होंगी। हमारी सांसों से भी वही आग निकलेगी जो हमने दामिनी की चिता से ली थी। लेकिन हमारी आंखें सिर्फ हमारी नहीं होंगी। दामिनी भी इनसे देख रही होगी। हमारी सांसें दामिनी की भी सांसें होंगी। दामिनी मरी नहीं है। दामिनी सभी फूलों में खिल रही है और देखो उस फूल की खुशबू सारी फिज़ां में बिखरी हुई है। लेकिन हर फूल के सीने में उसकी आग भी धधक रही है। उस चिता की राख से हज़ारों दामिनियां पैदा हो रही हैं। हज़ारों हाथ आज दामिनी के पिता और भाई के हाथों को थामे हुए हैं। उसका हाथ उसकी प्यार करने वाली मांओं और बहनों के गले में सज रहा है। उसके हाथ अत्याचारियों, बलात्कारियों और हत्यारों तक पहुंच रहे हैं। सावधान हो जाओ कमीनों! तुम हमारे आंसुओं के सैलाब में डूब जाओगे। तुम दामिनी की आग में जल जाओगे। हमारी आंखों में देखो। ये तुम्हारे दिल को छलनी कर देंगी। अरे मर्दों... अपने खुद के घर के चारों ओर देखो ये जानवर कहीं भी हो सकते हैं।

इन मुद्दों पर विमर्श का यही मौका है। हमें लिंग न्याय, सामानता और महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के इस संघर्ष को जारी रखने का प्रण लेना चाहिए। हमें यह प्रण लेना चाहिए कि हम न तो सिर्फ महिलाओं के खिलाफ हो रही सभी प्रकार की हिंसा के विरोध में आवाज़ उठाएंगे बल्कि इस अनवरत संघर्ष का हिस्सा भी बनेंगे जिससे कि दक्षिण एशिया महिलाओं के लिए एक सुरक्षित स्थान बन सके। हम यह प्रतिज्ञा लेते हैं कि हम दामिनी के बलिदान को व्यर्थ नहीं जाने देंगे। यदि दामिनी ने महिलाओं के विरुद्ध हो रही हिंसा के मुद्दे को मुख्याधारा से जोड़ा है तो हम इसे यूँ ही मरने नहीं देंगे। दामिनी तुम्हारी आत्मा को शांति मिले।

मुद्दा है बलात्कार की मानसिकता

■ सत्येंद्र रंजन

दिल्ली में तेइस वर्षीय छात्रा से बलात्कार की बेहद दुखद और आक्रोश पैदा करने वाली घटना के बाद जिस तरह लोग आंदोलित हुए हैं, उसे भारत के बेहतर भविष्य का संकेत माना जा सकता है। पिछले साल भ्रष्टाचार और अब बलात्कार के खिलाफ बड़ी संख्या में लोगों, खासकर नौजवानों का स्वतःस्फूर्त ढंग से सड़कों पर उतर आना यह संकेत देता है कि लोग अब सब कुछ चुपचाप सह लेने को तैयार नहीं हैं। कोई भी स्वस्थ लोकतंत्र ऐसे जन हस्तक्षेप से समृद्ध और स्पंदनशील बनता है।

ताजा घटनाक्रम में लोगों की दिखी दृढ़-संकल्पशक्ति का ही यह नतीजा है कि सरकार और प्रशासन हरकत में आए हैं। इस बहुचर्चित घटना में फुर्ती से सभी छह आरोपियों की गिरफ्तारी, ड्यूटी में ढिलाई बरतने वाले एसीपी स्तर के बड़े अफसरों समेत कई पुलिसकर्मीयों का निलंबन, न्यायिक जांच, फास्ट ट्रेक कोर्ट बनाने का फैसला, दिल्ली में महिलाओं की सुरक्षा के लिए घोषित अतिरिक्त उपाय, थानों में तुरंत शिकायत लिखने का निर्देश, और राजनीतिक स्तर पर मची हलचल ये सब जन दखल का ही परिणाम हैं। अगर सचमुच इनमें से कुछ उपायों को संस्थागत रूप दिया गया, तो वह अपराध-खासकर यौन अपराधों से महिलाओं को सुरक्षित बनाने की दिशा में एक टिकाऊ उपलब्धि होगी।

बहरहाल, इस आंदोलन ने राजनीतिक दलों की सीमा को फिर रेखांकित किया है। यह सचमुच हैरतअंगेज़ है कि

इस जनाक्रोश को नेतृत्व देने के लिए आगे आने का साहस किसी दल ने नहीं दिखाया।

इसी माहौल के बीच ही दोनों प्रमुख दलों-कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी ने एक-एक राज्य का चुनाव जीत लिया, जो जाहिर है उनके लिए बड़े संतोष की बात होगी। चूंकि राजनीतिक पार्टियां अब सिर्फ चुनाव की मशीन में तब्दील हो गई हैं, इसलिए उनके नेताओं को जागरुक जनता के एक बड़े हिस्से को परेशान कर रही समस्याएं या मुद्दे स्पर्श तक नहीं करते। जब कोई बड़ी हलचल मच जाए तो बयानबाजी या फौरी असर वाले ऐलान करके वे अपने कर्तव्य

भारत में अभी भी विवाह संबंध के भीतर बलात्कार की बात लोगों को अटपटी लगती है। यह पहलू अभी बहस के दायरे में भी नहीं है। लेकिन हकीकत यही है कि अपने यहां वैवाहिक संबंध असमानता के आधार पर बनते हैं और उसमें महिला से सेवा एवं एक विशेष कर्तव्य को निभाने की अपेक्षा की जाती है, इसलिए यौन संबंध में जबरदस्ती का पहलू सिरे से शामिल रहता है। जो संबंध किसी समाज की मूल इकाई है, अगर उसमें ही महिला एवं उसकी इच्छा का सम्मान नहीं है, तो सड़कों पर ऐसे सम्मान की अपेक्षा किसी ठोस आधार पर खड़ी नज़र नहीं आ सकती।

की इतिश्री मान लेते हैं। अपने इसी रवैये के कारण समाज को वैचारिक एवं वास्तविक नेतृत्व देने के लिहाज से ये दल अपनी प्रासंगिकता खो रहे हैं। दुखद यह है कि इन दलों को इस बात का अहसास तक नहीं है।

चूंकि समाज में ऐसे नेतृत्व का अभाव है, इसलिए लोगों के आंदोलन का अराजक रुख अख्तियार कर लेना अस्वाभाविक नहीं है। नतीजा यह होता है कि एक बड़ी ऊर्जा या तो बेकार चली जाती है, या अपनी दिशा खो देती है या फिर उसका लाभ समाज को प्रतिगामी दिशा में ले जाने वाली ताकतें उठा लेती हैं। अगर बलात्कार विरोधी आंदोलन बलात्कार की मानसिकता एवं संस्कृति तक बहस को ले गए बिना महज एक घटना के अपराधियों को कठोरतम सजा दिलवाने की मांग तक सिमट कर रह गया, तो यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति होगी। किसी

आंदोलन की ऊर्जा को बदलाव या समाज सुधार की कहीं जटिल एवं बारीक परिघटना में बदलने के लिए गहन वैचारिक विमर्श की ज़रूरत होती है।

ऐसा नहीं कहा जा सकता कि मौजूदा संदर्भ में यह कोशिश बिल्कुल नहीं हुई है। अनेक महिला अधिकार कार्यकर्ताओं एवं बुद्धिजीवियों ने तथ्यों, तर्क एवं अनुभवजन्य यथार्थ को मीडिया के ज़रिए लोगों के सामने रखा है। लेकिन यह आक्रोश जता रहे जन-समुदायों के साथ संवाद का आधार बना है, यह कहना संदिग्ध है। नतीजतन, वहां बलात्कारियों को फांसी देने और पुलिस-सुरक्षा के इंतजाम सख्त करने के नारों से बात आगे नहीं बढ़ी है।

जबकि मृत्युदंड अगर बलात्कार सहित किसी भी अपराध को रोकने में सहायक होता, तो समाज को काफी पहले अपराध-मुक्त बनाने में सफलता मिल गई होती। अतीत में और आज भी दुनिया के बहुत से समाजों में बलात्कारियों को न सिर्फ मृत्युदंड देने का प्रावधान है, बल्कि ऐसा पत्थरों से मार कर करने की क्रूर व्यवस्थाएं भी हैं।

दिल्ली की घटना निःसंदेह अत्यंत बर्बर है। लेकिन हकीकत यह है कि बलात्कार की ज़्यादातर घटनाओं में अपराधी इस हद तक नहीं जाते। तो क्या उससे यह माना जा सकता है कि वे घटनाएं मान्य या स्वीकार्य हैं? गौरतलब है कि पीड़ित महिलाओं की बहुसंख्या अपने परिजनों या परिचितों से ज़बरदस्ती का शिकार होती है। इसका कारण सिर्फ यह नहीं है कि पुलिस व्यवस्था भ्रष्ट या लापरवाह है-वह तो अपने देश में निश्चित रूप से है, जो आम जन की आम हिफाजत से जुड़ी अनेक दिक्कतों की जड़ है। मगर महिला उत्पीड़न के संदर्भ में उससे भी अधिक गंभीर समस्या घर, परिवार, समाज और हर मानवीय संस्था में स्त्रियों का निम्न दर्जा और उनके यौन-व्यक्तित्व (सेक्सुअलिटी) पर पुरुष नियंत्रण की परंपरा है।

भारत में अभी भी विवाह संबंध के भीतर बलात्कार की बात लोगों को अटपटी लगती है। यह पहलू अभी बहस के दायरे में भी नहीं है। लेकिन हकीकत यही है कि अपने यहां वैवाहिक संबंध असमानता के आधार पर बनते हैं और उसमें महिला से सेवा एवं एक विशेष कर्तव्य को निभाने की अपेक्षा की जाती है, इसलिए यौन संबंध में जबरदस्ती का पहलू सिर से शामिल रहता है। जो संबंध किसी समाज की मूल इकाई है, अगर उसमें ही महिला एवं उसकी इच्छा का सम्मान नहीं

है, तो सड़कों पर ऐसे सम्मान की अपेक्षा किसी ठोस आधार पर खड़ी नज़र नहीं आ सकती।

स्त्रियों के प्रति असम्मान एवं अपमान के इस भाव का इज़हार रोज़मर्रा के स्तर पर घर से लेकर दफ़्तर तक होता है। इसकी चरम परिणति बलात्कार के रूप में होती है। प्रतिरोध करने वाली स्त्री हिंसा का शिकार हो जाती है। यह हिंसा कभी-कभी उतनी बर्बर भी होती है, जिसका शिकार होकर उस तेइस वर्षीय युवती ने सिंगापुर के अस्पताल में दम तोड़ दिया।

यह अच्छी बात है कि इस बर्बरता ने लोगों की संवेदना को झकझोरा है। अगर इसके परिणामस्वरूप कानूनों में सुधार हुआ, पुलिसवालों की जवाबदेही तय करने का कोई सिस्टम बना और सरकारों की तंद्रा एवं उदासीनता टूटी- तो यह एक बड़ी बात होगी।

इसके बावजूद मूल प्रश्न अपनी जगह बना रहेगा। स्त्रियों का निम्न दर्जा और यौन-शुचिता के आधार पर उनके मूल्यांकन की परंपरा पर अगर चोट नहीं हुई, तो बात कहीं आगे नहीं बढ़ेगी। अगर आंदोलित युवा यही बोलते रहे कि बलात्कार की शिकार स्त्री की ज़िंदगी मौत से भी बुरी होती है- तो वे पारंपरिक स्त्री/मानव विरोधी मान्यताओं को ही बल प्रदान करेंगे।

आखिर जबरन किसी व्यक्ति के यौनांगों के उल्लंघन से उसकी इज्जत चली जाने की बात समाज में क्यों स्थापित रहनी चाहिए? स्त्री को आखिर सिर्फ शरीर के रूप में क्यों देखा जाना चाहिए? इसी मान्यता के ज़रिए सदियों से महिलाओं की स्वतंत्रता पर नियंत्रण रखा गया है। इसलिए यह सवाल अहम है कि बलात्कार विरोधी आंदोलन बलात्कार को लेकर कैसी मानसिकता के साथ चल रहा है?

अगर उसकी नज़र में भी महिला एक वस्तु है, जिसकी पवित्रता उसके यौनांगों से जुड़ी है, तो यह आंदोलन एक तात्कालिक भावावेश से अधिक कुछ नहीं है। चूंकि यह स्त्री विरोधी पारंपरिक मूल्यों को बल देता नज़र आएगा, इसलिए उसे प्रगतिशील नहीं कहा जा सकता। बहरहाल, युवा उत्साह एवं जज़्बे को सही दिशा ना देना राजनीतिक एवं सामाजिक नेतृत्व की विफलता है। कुल मिलाकर आवश्यकता सिर्फ सड़कों पर नारेबाजी की नहीं, बल्कि मुद्दे को व्यापक परिप्रेक्ष्य में रख कर समग्र संवाद की है, ताकि समाज की समझ सचमुच कुछ आगे बढ़े।

स्त्रियों की बढ़ती असुरक्षा क्या क्षणिक उद्वेलन समाधान है?

■ अंजलि सिन्हा

देश की राजधानी में चलती बस में सामूहिक बलात्कार की घटना ने सभी को उद्वेलित कर दिया है। आम लोगों, राजनीतिक सामाजिक संगठनों के अलावा संसद के जनप्रतिनिधियों ने भी स्त्रियों की सुरक्षा पर आसन्न खतरे के प्रति चिन्ता प्रगट की है। घटना में शामिल अपराधी पकड़े गए हैं।

प्रारम्भिक पूछताछ में पुलिस को पता चला है कि वे सभी आरोपी उस दिन मस्ती के मूड में थे और उन्होंने रविवार के दिन कुछ अतिरिक्त कमाई के इरादे से बस को सड़क पर निकाला था, बस में सवार एक यात्री को वह पहले ही लूट चुके थे और खाने पीने की पार्टी भी पहले ही कर चुके थे। फिर बस में लड़की के घुसते ही उन्होंने उससे छेड़छाड़ शुरू कर दी और बाद में जो हुआ उस घटनाक्रम से हम सभी परिचित हैं। अब यह भी पता चला है कि अपने पकड़े न जाने को लेकर वह इतने निश्चित थे कि घटना को अंजाम देने के बाद वह अपने घर सोने गए थे और इतना ही नहीं उन्होंने दूसरे दिन सड़क पर बस भी निकाली थी।

निश्चित ही ऐसे घटनाक्रम से हम पहली बार रू-ब-रू नहीं हुए हैं। अभी ज़्यादा दिन नहीं हुए जब मुनीरका वाली सामूहिक बलात्कार की घटना इसी राजधानी की सड़कों पर देखी गयी थी। जब ऐसी घटना होती है तो खूब चर्चाएं चलती हैं, तरह-तरह के सुझाव सामने आते हैं, लेकिन ऐसी मानसिकता वाले हमारे इर्द-गिर्द रहते हैं या कहीं-न-कहीं समाज में मौजूद हैं, वह किसी की चिन्ता का विषय नहीं बन पाता है ऐसी मानसिकता बदलने के लिए क्या कदम उठाए जाने चाहिए, इस पर विचार होना दूर की बात है।

इस घटना में तो यह भी कोई नहीं कह सकता कि वह अर्थात् पीड़िता इतनी रात को घर से बाहर क्यों निकली? यूं तो यह प्रश्न बेटुका भी है, लेकिन देर रात को घटने वाली ऐसी घटनाओं पर ऐसी प्रतिक्रिया सुनने को मिलती है। वैसे कोई भी समय स्त्रियों के लिए असुरक्षित क्यों हो? किन्तु इस घटना को देखें तो यह रात नौ बजे की राजधानी दिल्ली के बीच की बात है, जब पूरा शहर चलता फिरता रहता है। ऐसे

समय में भी कोई लड़की अगर सुरक्षित घर नहीं पहुंच सकती तो हम कैसे समाज में रह रहे हैं और यहां की कानून व्यवस्था कैसी है, यह प्रश्न जोरदार ढंग से उठेगा।

ऐसा होने पर यह मांग तपाक से सामने आती है कि अत्याचारियों को मृत्युदण्ड मिले, जैसा कि इस बार भी एक तबके की तरफ से कहा गया है। कुछ ने कहा कि किसी वकील को इनकी पैरवी नहीं करनी चाहिए। गृहमंत्री सुशील कुमार शिन्दे ने संसद के पटल पर कहा कि इस घटना की सुनवाई फास्ट ट्रैक कोर्ट में हो, इसे सरकार सुनिश्चित करेगी। खुद दिल्ली की मुख्यमंत्री ने भी दिल्ली हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश को इस सम्बन्ध में पत्र लिखा है। इस बात को मद्देनज़र रखते हुए कि लोकसभा तथा राज्यसभा दोनों जगह यह घटना एक मुद्दा बनी, और मीडिया में भी मामले पर जोर दिया गया, इसलिए यह सम्भव है कि घटना में शामिल अपराधियों को जल्द सज़ा सुनायी जाए। अभी ज़्यादा दिन नहीं हुए जब राजस्थान में घूमने आयी एक विदेशी युवती के साथ हुए बलात्कार के मामले में समूची सुनवाई पूरा करके अपराधियों को दण्ड सुनाने में अदालत को 15 दिन से अधिक वक्त नहीं लगा था। कहने का तात्पर्य सरकार अगर इच्छाशक्ति का परिचय दे, आम लोग अगर न्याय की मांग करने के लिए एकताबद्ध होकर आवाज बुलन्द करें, तो ऐसे मामलों में तत्काल न्याय मिल सकता है। लेकिन इसका मतलब भविष्य में फिर उन्हीं सड़कों पर और बसों में लड़कियां सुरक्षित ही रहेंगी, इसकी गारन्टी नहीं दी जा सकती।

अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि अब टिंटेड शीशे और परदे वाली बसों का चालान होगा क्योंकि घटना ऐसी बस में हुई थी, लेकिन पूछा यह जाना चाहिए कि इसके पहले भी गाड़ियों पर लगे परदों या टिंटेड शीशों के खिलाफ ट्रैफिक पुलिस का अभियान चल चुका है, जब ऐसे ही काले शीशे वाली कार में एक छात्रा के साथ हुए बलात्कार की घटना सामने आयी थी। सोचने का सवाल यह है कि आखिर अभी तक पूरी तरह ऐसे वाहनों पर बन्दिश क्यों नहीं लगायी जा सकी, इसे पूरा करने

में क्या बाधा आयी?

अब जहाँ तक फास्ट ट्रैक अदालत का सवाल है तो बलात्कार के मामलों में राष्ट्रीय महिला आयोग से लेकर तमाम मानवाधिकार संगठनों की तरफ से यह मांग हमेशा ही की जाती रही है कि यह अपवाद नहीं बल्कि नियम बने। अदालतों में मामलों का बढ़ता बोझ, यौन अत्याचार की जांच में पुलिस तथा अन्य सरकारी महकमों की जांच में दिखायी देती देरी, अत्याचार की घटना को लेकर समाज द्वारा पीड़िता की होने वाली प्रताड़ना या उस पर ही किया जाने वाला दोषारोपण आदि के चलते यह हमेशा ही कहा जाता रहा है कि त्वरित न्याय मिलने से पीड़िता के लिए भी जिन्दगी का नया पन्ना पलटना मुमकिन हो सकता है। सरकारी नीति को भी देखें तो वह भी अपने स्तर पर फास्ट ट्रैक कोर्ट की हिमायत करती मिलेगी, लेकिन वह हर स्तर पर बने या नहीं, उसके अमल में बाधा क्या है, यह सब जानने और इन बाधाओं को दूर करने की प्राथमिकता सरकारों के लिए कभी नहीं रही।

इसके अलावा यह बात भी की जाती रही है कि यौन अत्याचार को लेकर शिकायत करने और उस पर कार्रवाई करने के लिए आसान प्रक्रिया बने ताकि हर पीड़ित आसानी से शिकायत कर सके और उसे कार्रवाई का भरोसा मिले। ध्यान देने लायक बात है कि इस मामले में भी सरकार की तमाम घोषणाओं एवं अमल में लम्बा अन्तराल दिखता है।

प्रस्तुत घटना के बाद मीडिया में यह समाचार भी छपा है कि देश के विभिन्न महानगरों की 92 फीसदी महिलाएं अपने आप को असुरक्षित महसूस करती हैं। वाणिज्य एवं उद्योग मण्डल (एसोचौम) के सामाजिक विकास संस्थान की ओर से जारी रिपोर्ट से जुड़ा यह सर्वेक्षण दिल्ली, मुंबई,

कोलकाता, बेंगलुरु, हैदराबाद, अहमदाबाद, पुणे, देहरादून सहित कई शहरों में किया गया। रिपोर्ट में बताया गया है कि हर 40 मिनट में एक महिला का अपहरण और दुष्कर्म होता है। शहर की सड़कों पर हर घंटे एक महिला शारीरिक शोषण की शिकार होती है। हर 25 मिनट में छेड़छाड़ की घटना होती है। प्रश्न उठता है कि स्त्रियों को इस असुरक्षा से मुक्ति कैसे और कब मिलेगी?

जब घटना घट जाए और तब सख्त कानून याद आए और फिर वह लटक जाए इसे क्या मानें? उदाहरण के लिए सुप्रीम कोर्ट की तरफ से सरकार से बार-बार कहा गया है कि कार्यस्थलों को महिलाओं के लिए सुरक्षित बनाया जाए, आज से पन्द्रह साल से अधिक समय पहले विशाखा जजमेण्ट के बाद उसने इस सम्बन्ध में दिशा-निर्देश भी जारी किए हैं और सरकार को यह सलाह भी दी है कि वह इसको सुनिश्चित करने के लिए कानून बनाए। याद रहे कि छेड़छाड़ की बढ़ती घटनाओं को लेकर भी कोर्ट ने सरकार को सलाह दी है। आंकड़े यही बताते हैं कि छेड़छाड़ से लेकर यौन अत्याचार की घटनाएं लगातार बढ़ रही हैं, असुरक्षा बढ़ी है, मगर अभी भी ठोस कदमों की दरकार दिखाई देती है। ठोस कदमों का तात्पर्य है कि ऐसे सभी बिलों पर जो महिलाओं की समानता को बढ़ावा दें और उनकी सुरक्षा को सुनिश्चित करें उन्हें तत्काल पास कर कानून का रूप दिया जाए तथा उन्हें लागू करवाने की प्रक्रिया तेज की जाए। सभी सार्वजनिक स्थान वूमन फ्रेंडली कैसे बनें, इसके लिए योजना बने और उस पर अमल हो। सरकारी नौकरियों से लेकर निजी क्षेत्र की नौकरियों में या विभिन्न सार्वजनिक दायरों में महिलाओं की अधिकाधिक भागीदारी, उपस्थिति कैसे सुनिश्चित की जाए ताकि पुरुष वर्चस्व वाला वातावरण समाप्त हो।

देश के विभिन्न महानगरों की 92 फीसदी महिलाएं अपने आप को असुरक्षित महसूस करती हैं। वाणिज्य एवं उद्योग मण्डल (एसोचौम) के सामाजिक विकास संस्थान की ओर से जारी रिपोर्ट से जुड़ा यह सर्वेक्षण दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, बेंगलुरु, हैदराबाद, अहमदाबाद, पुणे, देहरादून सहित कई शहरों में किया गया। रिपोर्ट में बताया गया है कि हर 40 मिनट में एक महिला का अपहरण और दुष्कर्म होता है। शहर की सड़कों पर हर घंटे एक महिला शारीरिक शोषण की शिकार होती है। हर 25 मिनट में छेड़छाड़ की घटना होती है। प्रश्न उठता है कि स्त्रियों को इस असुरक्षा से मुक्ति कैसे और कब मिलेगी?

कुछ तो रखा है नाम में

■ सौम्य

शेक्सपीयर ने कहा था 'नाम में क्या रखा है'। शायद शेक्सपीयर नाम को एक 'लेबल मात्र' ही समझते थे और इसीलिए यह मानते थे कि-जैसे यह 'लेबल' वैसे यह 'लेबल' इसमें सोचने-विचारने वाली भला कौन सी बात है। चलिये अगर उनकी यह बात मान भी लें कि नाम में कुछ नहीं रखा तो यह बात तो सामने आती ही है कि नाम 'में' कुछ भी रख सकते हैं या कोई भी नाम रख सकते हैं। यानी एक ऐसा पात्र जिसमें कुछ भी डाला जा सकता है। पर मेरी यह बात तो शेक्सपीयर भी मानते हैं कि कुछ भी ढालने की आज़ादी हर किसी को नहीं मिलती। हर समाज में, हर संस्कृति में नाम रखने का प्राधिकार कुछ विशेष जनों को ही दिया जाता है। इसलिए क्योंकि नाम पर बहुत कुछ दांव पर लगा होता है। 9/11 की घटना के बाद पुलिस और अधिकारियों के सामने सबसे बड़ी समस्या थी मृतकों की 'पहचान' करना ताकि विह्वल परिजन नाम लेकर शोक मना सकें। हम अपने बच्चों का नाम बहुत सोच-समझ कर रखते हैं और धार्मिक लोग तो इसके लिए पुरोहितों और मौलवियों का मशविरा भी लेते हैं। सामाजिक स्तरीकरण और गैर-बराबरी के चलते नामकरण की प्रक्रिया में रहस्य में लिपटे शक्ति और ज्ञान के संबंध भी उजागर होते हैं।

कोई बस किसी का नाम नहीं रखता उसे वर्गीकृत भी करता है, उसे एक खांचे में डाल देता है। यह बात हमारे सामने पिछले दिनों तब सामने आई जब मुंबई 26/11 हमलों के आरोपी का नाम 'कसाब' दिया गया। ध्यान दें यूं तो 'कसाब' या 'कसाबा' भारत और पाकिस्तान भर में फैला हुआ एक समुदाय है। इस समुदाय के ज्यादातर लोग पेशे से 'कसाई' होते हैं। हज़रत ईसा और हज़रत इब्राहीम को मानने वाले ये लोग भारतीय उपमहाद्वीप के विविधतापूर्ण लोक संसार में एक सघन और महत्वपूर्ण उपस्थिति हैं। मुंबई पुलिस ने अपनी आधुनिकता का परिचय तब दिया जब उस हमलावर के कृत्य के बीच और उसके समुदाय के प्रचलित पेशे 'कसाई' के बीच एक निरंतरता या सततता को देखा। कसाई है तो हत्या करेगा ही, हिंसक होगा ही। मुंबई पुलिस ने उसका नाम 'कसाब' रखके, जो कि दरअसल एक समुदाय है, पूरे समुदाय की रुसवाई की। यह कमीनी हकीकत

तब भी सामने आई जब अनुराग कश्यप ने अपनी चर्चित फिल्म 'द गैंग्स ऑफ वासेपुर' में 'कुरैशियों' का, जो 'कस्साबों' का ही हिस्सा हैं, ऐसा चित्रण किया मानो वे बेहद दगाबाज़, छली और हिंसक किस्म के लोग हैं।

तो आप देख सकते हैं कि किसी को नाम देना उसे नाम द्वारा खोले गये अहाते में निरस्त कर देना भी है। इसकी पड़ताल नामकरण से जुड़ी तमाम अभिवृत्तियों को हमारे सामने लाती है। पिछले दिनों 'दिल्ली गैंगरेप केस' में पीड़ित लड़की को 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने 'दामिनी' नाम दिया। फिर तो नाम देने का जैसे सिलसिला ही चल पड़ा। 'अमानत', 'निर्भया', 'तमन्ना' और जाने क्या-क्या। इससे पहली बात तो यह सामने आती है कि हमारे सभ्य समाज में मीडिया ही पुरोहित या मौलवी की भूमिका अख्तियार कर चुका है। वह पहचान छुपाने के नाम पर मनचाहे नाम दे सकता है और गहरे 'कनेक्शन्स' जोड़ सकता है। अब जैसे सचेत और साभिप्रायित रूप से रखे इन नामों को ही लें। दामिनी और निर्भया की सीरीज़ सीता, द्रोपदी और आगे तक जाती है। और फिर बलात्कार भी एक पवित्र अग्निपरीक्षा या तापसिक संघर्ष तक जाता है। मानो यह एक अनिवार्य शर्त है जिससे गुज़रकर एक आम महिला देवत्व को प्राप्त हो जाती है। यह नाम केवल उसकी लड़ने या जूझने की क्षमता पर ही नहीं रखे गए बल्कि स्त्री नाम के मूल्य को स्थापित भी करते हैं। वह मूल्य जो अनुकरणीय है और जिसके साथ अपने आपको 'कन्फर्म' करना हर आम महिला का कर्तव्य होना चाहिए। इस तरह मीडिया पुरोहित की अपनी भूमिका का निर्वाह केवल नाम रखकर ही नहीं औरतों के लिए एक पूरा नीतिशास्त्र रचकर भी करता है।

क्या होता जो उसका नाम 'जूली' रख देते। पर नहीं, 'जूली' वाली सीरीज़ तो कॉलगर्ल या वेश्या तक जाती है। यह कोई अनुसरणीय मिसाल नहीं रखता बल्कि उनके साथ किया गया बलात्कार भी एक हद तक जायज़ ही होता! इस केस में लड़की की कोई पहचान न होना और इसलिए उसे मनचाही पहचान दे पाना उपदेशात्मक विमर्श के फलने-फूलने

शेष पृष्ठ 12 पर

दामिनी के आगे!

■ अंजलि सिन्हा

नए साल के इन्तज़ार में बीते साल की रात इस बार अलग ढंग से बीती। राजधानी में कई जगहों पर लोग एकत्रित होकर नए साल का स्वागत मानो इस संकल्प के साथ कर रहे थे कि अब और अत्याचार नहीं। दिल्ली के कनाट प्लेस जैसी जगह जहां हर साल नववर्ष की पूर्वसंध्या पर तमाम लोग एकत्रित होकर जश्न मनाते हैं, वह भी तुलनात्मक रूप से खामोश रहा। यह अच्छी बात है कि एक आम लड़की ने सभी को सोचने के लिए और अपनी प्रतिबद्धता जताने के लिए प्रेरित किया है। वह लड़की जिसे हमने 'निर्भया', 'दामिनी', 'अमानत', 'ज्योति' ऐसे कई नामों से पुकारा - उसकी जीने की जिजीविषा सुस्त पड़ी तरुणाई को अन्दर तक झकझोर गयी।

लम्बे समय बाद यह दिखाई दिया कि इंडिया गेट एवं रायसीना हिल्स जैसे सत्ता के गलियारों तक जुझारू प्रदर्शन हो रहे हैं, आंसू गैस के गोले छूट रहे हैं और लोगों को वहां पहुंचने से रोकने के लिए सरकार को मेट्रो के कई स्टेशनों की बन्दी का ऐलान करना पड़ा। किसी राजनेता ने ठीक ही कहा है कि यह आज़ाद भारत के इतिहास में पहली दफ़ा था कि महिलाओं के साथ अत्याचार के मसले पर इतनी बड़ी तादाद में युवा उतरे। मीडिया इस बात को भी दिखा रही है, इसका असर पूरे देश पर दिख रहा है और देश के तमाम हिस्सों में लोग सड़कों पर उतरे हैं। इतना ही नहीं सरकार को भी इस मामले में कदम उठाने के लिए मजबूर होना पड़ा है और न केवल कानून में ज़रूरी सुधार लाने की बात करनी पड़ी है बल्कि न्यायप्रणाली को अधिक चुस्त करने, फास्ट ट्रेक अदालतें स्थापित करने जैसे पहले किए गए निर्णयों को अमली जामा पहनाने की बात करनी पड़ रही है। बीते साल को किसी विश्लेषक ने ठीक ही कहा है कि 'प्रदर्शनकारी का वर्ष' अर्थात् प्रतिवाद एवं प्रतिरोध की संस्कृति को पुनर्जीवित करने का वर्ष।

निश्चित ही यह अभी परखा जाना है कि इस जनाक्रोश के दबाव में सरकार ने जो वादे महिलाओं की सुरक्षा को लेकर किए हैं, वह कितने लागू हो रहे हैं। अभी तक की सरकारी

लापरवाही और गैरज़िम्मेदारी का उन्हें एहसास कराना तथा त्वरित कार्रवाई के लिए बाध्य किया जाना जनता की जिम्मेदारी है तो दूसरी तरफ हर इन्सान, हर परिवार और पूरे समाज को यह जवाब देना है कि ऐसे पुरुषों की ऐसी मानसिकता बनी क्यों है? वे अपने पूरे होशो-हवास में जानबूझकर वहशी व्यवहार करते हैं, उनके लिए तो जो कुछ बोला जाए वह कम है। लेकिन हम यह भी पाते हैं कि अपराधी सिर्फ वही नहीं हैं जिन्होंने इस हद तक उतर कर घृणित अपराध नहीं किया, उनमें भी औरत के प्रति सम्मानजनक नज़रिया विकसित नहीं हुआ है और वे सभी मिल कर भी स्त्रीद्रोही वातावरण तैयार करते हैं जिसमें बड़े अपराधों को अंजाम देने की हिम्मत अपराधी जुटा लेते हैं। हमारे समाज में छींटाकशीं, भेदे मजाक, अश्लील व्यवहार आदि की गिनती नहीं की जा सकती है। यहां तक कि हमारी दैनंदिन संस्कृति में या त्यौहारों-उत्सवों में प्रगट या प्रच्छन्न रूप में नारीविरोध, नारी अपमान इतने गहरे में रचा बसा होता है कि वह सामान्यबोध का हिस्सा बन जाता है। उत्तर भारत में शादी के मौके पर गाए जाने वाले चन्द गीतों को देखें तो वह तरह-तरह के अश्लील सम्बन्धों की बात करता है, जिसे हंसी-मज़ाक का हिस्सा समझा जाता है। या होली के आयोजन को देखें, भारत के बहुसंख्यक समुदाय में होली के अवसर पर जो गीत गाए जाते हैं या इस दिन 'आधिकारिक तौर पर' रंग लगाने के नाम पर जिस तरह स्त्रियों-लड़कियों को छूने या छेड़ने का जो लाइसेन्स मिल जाता है, उसके बारे में क्या कहेंगे? सभी जानते हैं कि होली के इस त्यौहार के पांच छह दिन पहले किशोरियां-लड़कियां घर के बाहर निकलने में खुद को सीमित करती हैं क्योंकि कब कहां से पानी का गुब्बारा आएगा, इसका अन्दाज़ लगाना मुश्किल होता है। विडम्बना यही है कि दूसरे को इस भेदे ढंग से प्रताड़ित करने को लेकर माता-पिता की भी मौन सहमति होती है। वह अपनी सन्तान को यह नहीं सिखाते कि दूसरे के साथ ऐसा व्यवहार अनुचित है। ज़िन्दगी और मौत के बीच 13 दिन जूझती रही उस निर्दोष लड़की ने-जो हममें से एक थी, और अपने कैरिअर को लेकर भी उसके अपने विचार

थे-इस बीच हमें और भी बहुत कुछ एहसास कराया है। एक दूसरे से अनजान अपरिचित लोग इस अन्याय के खिलाफ एकजुट हुए हैं। बड़े-बड़े प्रदर्शनों के साथ ही जिसमें हर उम्र के लोग शामिल हुए, महिलाओं के साथ-साथ पुरुषों की भी बड़ी संख्या सड़कों पर उतरी वहीं गली-मुहल्लों में भी यह आवाज़ पहुंची, वहां पर भी जुलूस निकले। यहां तक कि पांच-दस छात्र छात्राओं के समूह भी जुलूस की शकल में न्याय की मांग करते हुए सड़कों पर देखे गए।

निश्चित ही बढ़ता असुरक्षित वातावरण अब सभी के सरोकार का मुद्दा बन गया है। लगातार विरोध प्रदर्शनों में भागते-भागते थक कर चूर हो चुके युवाओं का हौंसला देख कर यही लगा कि अब बहुत कुछ अच्छा भी होने वाला है, वे अपने हकों के प्रति जागरूक हैं और अमन तथा इन्साफ की दुनिया बनाने में उनकी अच्छी भूमिका बनेगी। यह पूरा जनप्रतिरोध अपने परिवेश को लेकर एक तार्किक और जवाबदेह नज़रिया विकसित करने में मदद करेगा।

सड़क से लेकर सत्ता के गलियारों तक पहुंची इस सरगर्मी के दौरान कुछ लोग यह कहते भी पाए गए कि धीरे-धीरे यह आन्दोलन और जनाक्रोश भी थम जाएगा। दरअसल थमता तो हर आन्दोलन है लेकिन उनमें से सभी रूकता नहीं है वह दूसरे रूप में जारी रहता है। दूसरी बात हर उभार समाज पर अपना असर भी छोड़ता है। 70 के दशक के उत्तरार्द्ध में जब मथुरा बलात्कार काण्ड के खिलाफ महिलाओं का व्यापक आन्दोलन खड़ा हुआ, यौन अत्याचार के लिए स्त्रियों के 'चरित्र' को ही लांछन लगाने के सिलसिले पर प्रश्न उठे, तो उसने महिलाओं के लिए जगह भी बनायी। याद रहे

कि आदिवासी युवती मथुरा के साथ पुलिस कस्टडी में हुए अत्याचार को लेकर सर्वोच्च न्यायालय ने विवादास्पद टिप्पणी की थी और अत्याचारी पुलिसकर्मियों को इस आधार पर छोड़ दिया था कि मथुरा 'संदिग्ध चरित्र' की युवती थी। इसी फैसले का विरोध करते हुए कुछ न्यायविदों एवं महिला अधिकार कार्यकर्ताओं ने सुप्रीम कोर्ट के नाम खुला खत लिखा था। यहीं से एक तरह से आन्दोलन की नींव पड़ी थी।

ऐसा नहीं कह सकते कि बलात्कार कानूनों में जरूरी संशोधन के लिए प्रेरित करने वाले इस आन्दोलन के तीन दशक बाद आज भी पुलिसिया व्यवहार या न्यायपालिका की बहसों में स्त्रियों के चरित्र को प्रश्नांकित करने की कोशिश नहीं होती, मगर अब ऐसा होने पर विरोध भी उतना ही होता है। अब कोई राजनेता या अधिकारी स्त्री के विरोध में बयानबाजी करने के पहले दस बार सोचता है और अगर अपने पुरुषप्रधान चिन्तन के अन्तर्गत बयान देता भी है तो अच्छी भली भद्द पिटती है उसकी। अभी हमारे सामने ही राष्ट्रपति के बेटे अपने नारीविरोधी बयान को लेकर तीखी आलोचना का शिकार हुए तथा उन्हें माफी मांगनी पड़ी और लड़कियों को स्कर्ट पहनने से मना करने वाले भाजपा विधायक को लड़कियों के घेराव का सामना करना पड़ा।

यह भी विचारणीय है कि जब कोई किसी अन्याय के खिलाफ उठ खड़ा होता है तो बाद में उसे अन्य दूसरे अन्याय भी दिखने लगते हैं और इस रूप में समाज को आगे ले जाने वाली ताकतें आपस में नयी मज़बूती ग्रहण करती जाती हैं। समाज की अग्रगति उन निराशावादियों से तय नहीं होती जिन्हें हर प्रयास में खोटा नजर आती है।

कुछ तो रखा है नाम में

पृष्ठ 10 का शेष

का एक बड़ा कारण है। औरत का स्त्री और वेश्या के क्रमशः सकारात्मक और नकारात्मक मूल्यों में बंटता होना इस बात को सफाई के साथ मिटा देता है कि वह हाड़-मांस से बनी एक मनुष्य है। उसकी लोमहर्षक पीड़ा को एक शैव स्वरूप देकर मीडिया ने मानो उसे धर्म का विषय बना दिया है जहां एक तरफ रखे गये यह आदर्श दूसरी तरफ औरतों के बर्बर पुलिसिकरण को भी बढ़ा देते हैं।

एक तरफ आरोपियों को 'दरिद्र' और दूसरी तरफ

लड़की को 'निर्भया' कहना एक ऐसा द्वैत है जिसके मार्फत हमारा समाज खुद को बयान कर रहा है या अपना उपदेश सुना रहा है। इस प्रतिहिंसा को बढ़ावा देकर मीडिया अपनी तथाकथित 'एक्टिविस्ट' की भूमिका में इतरा रहा है। और सरकार चुप है। लड़की के परिवार की सहमति के बाद भी सरकार का उसकी पहचान को लेकर यूं गोपनीय रहना बड़ा ही संदेहास्पद नज़र आता है। यहां स्टेट खुद औरतों पर पहरा बिठाने वाले परिवार की तरह एक्ट कर रहा है। क्या हम भी यही चाहते हैं कि गोनगों लड़कियों के नामों पर दलाती यूं ही होती रहे या हमारे लिए लड़ाई का सही स्वरूप इन नामों के ज़रिये उजागर हुई ग्रिड से लड़ने का है जिसके तमाम खोखलों में औरत हिज्जा-हिज्जा तकसीम हो गई है।

इसी बहाने

■ आशु वर्मा

दिल्ली में 16 अक्टूबर को छः दरिंदों से जूझती, अपने साथ हो रहे अपमान और हिंसा का प्रतिकार करती, इस असभ्य समाज में स्त्री होने का दंड भुगतती, एक लड़की लगभग तेरह दिनों तक मौत से लड़ती रही और आखिर में मर गयी... मथुरा बलात्कार कांड (महाराष्ट्र) और माया त्यागी काण्ड (बागपत) के बाद शायद पहली बार इतना मुखर जन प्रतिरोध देखने को मिला। हज़ारों लोगों ने एक हफ्ते तक सरकार को घेरे रखा। सोशल-मीडिया के कारण पढ़ा-लिखा मध्यम और उच्च-मध्यम वर्ग सड़कों पर उतरा। विभिन्न



सामाजिक संगठनों ने सरकार पर दबाव बनाया। पुलिस-प्रशासन सक्रिय हुए। बलात्कारियों को फांसी देने या बधिया बना देने सम्बन्धी मांगे हुयीं। विभिन्न प्रकार की याचिकाएं दायर हुयीं। लोगों के सामूहिक प्रयास से नए साल पर गुडगाँव के एक होटल में अश्लील गायक हनी सिंह का कार्यक्रम रद्द करना पड़ा। लड़कियां मुखर हुयीं। निश्चय ही शहरों और कुछ एक गाँवों में जहां टीवी और अखबार उपलब्ध है, इस कुकृत्य की भर्त्सना हुयी। इन सारी आपाधापी और विरोधों के बीच राजधानी दिल्ली, हरियाणा और बहुत सारे इलाकों में बलात्कार बदस्तूर जारी रहे... अलग-अलग रूपों में औरतों के खिलाफ हिंसा की खबरें लगातार आती रहीं।

इस बीच पितृसत्ता की बेदी पर कुर्बान उस छात्रा को मीडिया ने नया नाम दे दिया-दामिनी, निर्भया या शायद और भी कुछ। यही नाम, हां, यही फर्जी नाम मुझे परेशान किये जा

रहा है। अगर इस समाज ने सदियों से अपनी बेटियों को निर्भय बनाया होता, धर्मशास्त्रों की कैद से उसे मुक्त कर 'पूजने' की वस्तु के बजाय वास्तविक नागरिक बनाया होता, तो शायद ऐसी नौबत ही नहीं आती। कोर्ट-कचहरी तो अभी भी हैं। जिस समय 'निर्भया' और उसके मित्र को चलती बस से नंगा फेंक दिया गया तब भी आस-पास पीसीआर मौजूद थी, आरोपी एकाध दिनों में पकड़ ही लिए गए थे। दिल्ली में जिले की अदालतों से लेकर सुप्रीम कोर्ट तक मौजूद है। इस लोमहर्षक घटना पर सुप्रीम कोर्ट सीधे हस्तक्षेप कर सकता था,

लेकिन अभी तो काफी समय में सज़ा तय होगी और दामिनी के परिवार के लोग तिल-तिल मरेंगे। यह सब अनंत काल से चल रहा है और आगे भी जारी रह सकता है, अगर हमने आज से ही अपने परिवारों में बदलाव लाना, अपनी लड़कियों के साथ सामान्य इंसान की तरह व्यवहार करना शुरू नहीं किया।

हमारे परिवारों में तीन साल की बच्ची को पता होता है की उसे 'औरत' बनना है और लड़के को पता होता है की उसे 'मर्द' बनना है। जैसे-जैसे लड़की लम्बी होने लगती है, उसका शरीर सिमटने लगता है। उसके कपड़े लम्बे होने लगते हैं। जल्दी ही वह समझ जाती है की उसे क्या ढंकना है और क्या नहीं। परदे के अन्दर नहाना है, भाई की तरह बाहर खुले में नहीं। छातियां उभरते ही झुक कर चलना है, टाईट कपड़े पहनने हैं, महावारी शुरू होते ही उसकी रखवाली शुरू हो जाती है। अपने शरीर पर भरोसेमंद रिश्तेदारों

की रंगती उंगलियों के गंदे स्पर्श का अर्थ वे समझने लगती हैं। हाटों, बाजारों, बसों, पार्कों, सड़कों, मेलों या भीड़भाड़ वाली जगहों पर खुद को बचाए रखना लड़की और उसकी माँ का 'मिशन' बन जाता है, जो अक्सर नामुमकिन होता है। कानों में पड़ने वाली बेहूदा बातों और सफेद हो चले बालों वाले किसी 'अंकल' की ललचायी आँखें उसे समझा देती हैं की वह एक 'माल' है, और उसने अपनी हिफाजत नहीं की तो वह 'हड़प' ली जायेगी।

भाई अपनी बहन का कद लंबा होते और घर में उसकी हैसियत छोटा होते देखता है। वह जानता है कि यह घर उसका है और बहन का 'दान' होना है। वह जानता है कि यह घर उसकी फरमाइशें पूरी करने के लिए बहन की पढ़ाई भी छोड़ा सकता है। वह जानता है कि उसकी माँ के चेहरे पर जो काला निशान है वह दूसरी बहन जनने के कारण उभरा है। वह जानता है कि पिछली बार जब उसकी माँ के पेट पर लात मारी गई थी तब उसकी बहन पेट में थी। वह अपनी माँ को पिटते देखता है। बहन को बात-बात पर डांट खाते देखता है और यह सब उसके लिए 'सामान्य' और न्यायोचित होता है क्योंकि यह बात उसके पिता और दादा अक्सर कहा करते हैं। वह समझ जाता है कि वह भी अपने जीवन में आने वाली महिला या सामने पड़ने वाली किसी भी महिला के साथ ऐसा ही करने का हकदार है।

लड़का-लड़की माँ-बहन की गालियां सुनते बड़े होते हैं। जैसे-जैसे लड़का बड़ा होता जाता है, उसे ढेरों गालियां याद हो जाती हैं। उसकी 'मर्दानगी' इस बात से तय होती है कि वह औरतों को अपमानित करने वाली कितनी अधिक अश्लील गालियां दे सकता है, जबकि गालियां सुन कर लड़की शर्मसार होती है। 'कौमार्य भंग' लड़की का ही होता है जो अक्सर 'औनर किलिंग' का सबब बनता है, जबकि ऐसे में लड़के की मर्दानगी पर मुहर लगती है। बचपन से किशोर होने तक हज़ारों विज्ञापन देखते, बेहूदे फिल्मी गाने सुनते और फिल्में देखते हुए यह बात ज़्यादातर लड़कों के खून में मिल जाती है कि लड़की एक 'माल' है, जिससे किसी भी तरह की छूट ली जा सकती है। वे भीतर ही भीतर समझ जाते हैं कि अगर लड़कियों को 'माल' की तरह पेश किया जा रहा है तो इसमें कहीं न कहीं सेंसर-बोर्ड और सरकार की सहमति है। पोर्न साईट मुफ्त में उपलब्ध हैं। सरकार उन्हें 'जाम' करने में 'असमर्थ' है।

यौन नैतिकता और शुचिता लड़कियों के लिए ही है। उनकी और उनके परिवार की 'इज्जत' उसी से बनती-बिगड़ती है। शुचिता भंग होते ही वे 'बेकार', 'अनुपयोगी', विवाह करने या फिर जीने के लायक ही नहीं रह जाती। लड़के और लड़की के लिए सदियों से जो दोहरे मानदंड बनाए गए हैं, वही आज वहशियाना रूप में फूट रहे हैं। चूंकि आज लड़कियां अपनी आज़ादी के प्रति सचेत हैं, आज़ादी की दावेदारी कर रही हैं, अपने साथ हो रहे अमानुषिक व्यवहार का विरोध कर रही हैं, इसलिए उन्हें दण्डित करने के एक तरीके के रूप में बलात्कार की घटनाएं बहुत बढ़ गई हैं।

यह कहना कि बलात्कार अनैतिक और बेहिसाब तरीके से धन कमाए मनमौजियों के मन बहलाव का एक शगल बन रहा है, या फिर उद्देश्यहीन घूमते बेरोज़गार नौजवानों के बीच से कुछ कुण्ठित, अमानवीकृत, रुग्ण लोगों का कुकृत्य है, यह आंशिक रूप से सही हो सकता है। लेकिन इसे अपवाद के रूप में नहीं बल्कि, महिलाओं पर दिन-रात, हर जगह हो रही शारीरिक-मानसिक हिंसा की चरम परिणति के रूप में ही देखा जाना चाहिए। जिस देश में अहिल्या का बलात्कार करने वाले इंद्र की आज भी पूजा होती हो, और आज भी जिसे कथाओं में गर्व से सुनाया जाता हो, वहाँ भद्र लोक के लिए इस तरह की घटनाएं होना कोई अजूबा नहीं। सम्पत्ति से वंचित, वर्जनाओं, आचार-संहिताओं और धर्मशास्त्रों की बेड़ियों में जकड़ी स्त्री या तो ऐसे अमानुषिक हमले झेलने के लिए अभिशप्त रहेगी या फिर उसका विरोध और प्रतिकार भयंकर रूप लेकर फूटेगा। समय आ गया है जब हमें अपने घर-परिवार, टोले-मोहल्लों, कॉलोणियों, स्कूल-कालेजों, अपने काम की जगहों में पुरजोर तरीकों से अपनी बात रखनी चाहिए। बच्चों, उनके माँ-बाप, लड़के-लड़कियों और बुजुर्गों तक अपनी बात पहुंचानी चाहिए। आसपास होने वाली स्त्रीविरोधी घटनाओं पर सामूहिक और जुझारू तरीके से रोष प्रगट करना चाहिए, महिलाओं के लिए बने कानूनों को समय पर और सही तरीके से लागू करने के लिए प्रशासन पर दबाव डालना चाहिए। और बदलाव की पहल करनी चाहिए। स्त्री मुक्ति की चेतना, संगठन और पुरुषप्रधान मूल्य-मान्यताओं की एक-एक अभिव्यक्ति के खिलाफ संघर्ष ही महिलाओं को समाज में बराबरी का स्थान दिला सकता है, उनकी अस्मिता को स्थापित और प्रतिष्ठित कर सकता है।

एक झलकी इरोम इतिहास की

प्रतिरोध की अनोखी दास्तां शर्मिला

■ सुभाष गाताडे

शर्मिला ने अपनी मां से यह कहते हुए आशीर्वाद मांगा कि वह इन्सानियत की सेवा के लिए कुछ काम करने जा रही हैं। अपने घर से सीधे इरोम शर्मिला मालोम बस स्टैण्ड पहुंची, जहां के रक्त के दाग अभी ठीक से सूखे भी नहीं थे, और वहीं पास बैठ कर उसने अपनी भूख हड़ताल की शुरुआत की। जो आज तक जारी है...

इरोम शर्मिला, उम्र 40 वर्ष, क्या यह नाम कुछ जाना-पहचाना लगता है?

दरअसल, इरोम नन्दा और इरोम सखी की नौ सन्तानों में सबसे छोटी शर्मिला चानू की, हममें से तमाम लोगों की तरह बहुविध पहचानें हैं। बहन विजयन्ती के लिए या भाई सिंहजीत के लिए वह उनकी लाइली बहन है, जिसके अन्दर बचपन से ही 'कभी न झुकने का माद्दा' है। चन्द करीबी दोस्तों के मुताबिक वह योग के प्रति बेहद उत्साही रही है और वह प्राकृतिक उपचार की भी शौकीन रही है।

मणिपुर के रचनाकारों के लिये, वह एक ऐसी कवयित्री है जिसने सैकड़ों कवितायें लिखी हैं, लेकिन आज की तारीख तक महज उसका एक ही संग्रह 'इमादी खोनगदाई सेतलारोई' नाम से प्रकाशित हुआ है। और जहां तक मणिपुर की व्यापक आबादी का सवाल है, वह इरोम शर्मिला चानू नहीं है, बल्कि 'मणिपुर की लौह महिला' है जिसने अपने अनोखे संघर्ष के जरिये एक असंवैदनशील हुकूमत को और काले कानून पर टिके उसके निजाम को चुनौती दी है।

गौरतलब है कि टीवी चैनलों की भरमार और प्रिन्ट मीडिया के विस्तार में लगातार होती बढ़ोत्तरी के बावजूद हिन्दी पढ़ी के अधिकतर जागरूक लोग भी यह नहीं बता सकेंगे कि निम्न मध्यमवर्गीय परिवार में जनमी शर्मिला जो 12वीं कक्षा के बाद अपनी पढ़ाई भी जारी नहीं रख सकी, वह अपने जीवन में ही किंवदंती/दंतकथा कैसे बन सकी।

इरोम शर्मिला चानू के संघर्ष की गाथा अब इतिहास में उन महान संघर्षों की गाथा में जुड़ गयी है, जब किन्हीं व्यक्ति विशेष ने समूची सल्तनत को चुनौती दी। इरोम शर्मिला की बस एक ही मांग है उसके राज्य में लम्बे समय से लागू आर्म्ड फोर्सिस स्पेशल पावर्स एक्ट (सशस्त्र बल विशेष अधिकार अधिनियम) को हटा दिया जाये।

इरोम शर्मिला ने इम्फाल से 15-16 किलोमीटर दूर मालोम नामक स्थान पर जब अपनी भूख हड़ताल शुरू की तब किसी सोची-समझी योजना के तहत उसका आयोजन नहीं हुआ था। दरअसल 2 नवम्बर 2000 को सुरक्षा बलों ने वहां बस स्टैण्ड पर अंधाधुंध गोलियां चला कर दस मासूमों को मार डाला था। यह कोई पहला मौका नहीं था कि मणिपुर की सड़कों पर मासूम नागरिकों का खून बहा था। ऐसे कई मौके पहले भी आये थे।

इरोम सखी को इस बात का अन्दाज़ा ही नहीं था कि उस समय उनकी बेटी के मन में क्या उमड़-धुमड़ रहा है। जब शर्मिला उस दिन उनका आशीर्वाद लेने पहुंची तो यह कहते हुए उनसे आशीर्वाद मांगा कि वह इन्सानियत की सेवा के लिए कुछ काम करने जा रही हैं। अपने घर से सीधे इरोम शर्मिला मालोम बस स्टैण्ड पहुंची, जहां के रक्त के दाग अभी ठीक से सूखे भी नहीं थे। और वहीं पास बैठकर उसने अपनी भूख हड़ताल की शुरुआत की। उसकी मांग कहने के लिए बहुत आसान थी, मगर अमल करने के मामले में सत्ताधारियों के लिए बहुत मुश्किल। उसने उस खतरनाक कानून की वापसी की मांग की, जिसके तहत सुरक्षा बलों को असीमित अधिकार मिले हुए थे।

शुरू में मालोम या आस-पास के निवासियों के लिए इस युवती द्वारा शुरू किये गये शान्तिपूर्ण प्रतिरोध की बात हजम करना मुश्किल साबित हो रहा था। कुछ मुट्ठीभर लोगों की निगाह में इरोम शर्मिला उपहास का पात्र थी। लेकिन किसी को भी यह गुमान नहीं था कि शर्मिला अपने संकल्प पर अडिग रहेगी। मालोम बस स्टैण्ड पर शुरू हुए इस अनोखे भूख हड़ताल की खबर धीरे-धीरे सूबे के अन्य हिस्सों में भी पहुंची और उसके प्राणों की रक्षा करने के लिए सरकार पर दबाव बढ़ा। इस दबाव से बचने का एक ही

रास्ता था कि सरकार ने इरोम शर्मिला को 'आत्महत्या करने के आरोप में' न्यायिक हिरासत में ले लिया और 21 नवम्बर को प्रशासन ने उसे अस्पताल में भर्ती कर, वहीं नाक से जबरन द्रव्य पदार्थ देने का सिलसिला शुरू किया।



'आत्महत्या की कोशिश' के लिये अदालत अधिक से अधिक एक साल की सजा दे सकती है और इतने सालों के दौरान शर्मिला कई बार उसे काट चुकी है। उसे एक साल की सजा पूरी करने के बाद न्यायिक हिरासत से रिहा किया जाता है और तुरन्त गिरफ्तार कर जवाहरलाल नेहरू अस्पताल के उसी सीलन भरे वार्ड में डाल दिया जाता है और यह चक्र जारी रहता है। इरोम शर्मिला का संघर्ष आज के वक्त में मणिपुरी अवाम के प्रतिरोध का महत्वपूर्ण प्रतीक बना है, जो प्रताड़नाओं-वंचनाओं के खिलाफ लगातार संघर्ष कर रहे हैं।

पूर्वात्तर को छोड़ शेष दुनिया इरोम शर्मिला के अनोखे संघर्ष के बारे में तब जान पायी जब थांगजाम मनोरमा नामक मणिपुरी महिला की सुरक्षा बलों द्वारा किये बलात्कार-हत्या (11 जुलाई 2004) के बाद जनाक्रोश उठा। मणिपुरी अवाम के इस विद्रोह में भी वहां की महिलाओं ने अग्रणी भूमिका अदा की। सुरक्षा बलों द्वारा किये जाते अत्याचारों के मद्देनजर लगभग एक दर्जन बुजुर्ग महिलाओं ने असम राइफल्स के मुख्यालय के सामने बिल्कुल निर्वस्त्र होकर प्रदर्शन किया और बैनर लहराया 'भारतीय सेना आओ हम पर अत्याचार करो', 'भारतीय सेना हमारे मांस के चिथड़े नोचो'। अन्दाज़ा ही लगाया जा सकता है कि इस ऐतिहासिक प्रदर्शन के बाद समूचे मणिपुर में थांगजाम मनोरमा के हत्यारों को सज़ा दिलाने और कुख्यात सशस्त्र बल अधिनियम खारिज करने को लेकर जारी आन्दोलन ने और जोर पकड़ा।

इरोम शर्मिला के संघर्ष के 12 साल पूरे होने के बावजूद इस ऐतिहासिक सत्याग्रह को लेकर नज़र आ रही 'चुप्पी का यह षडयंत्र' कोई अपवाद नहीं है। उत्तर पूर्व की घटनाओं को लेकर शेष भारत में निरन्तर व्याप्त विराट मौन ही रहा है। आप यह भी कह सकते हैं कि कुल मिलाकर उत्तर पूर्व का समूचा वजूद आज भी आम जनसाधारण की बात छोड़ दें, जागरूक लोगों के 'चेतना के हाशिये पर' ही है।

'सैन्यीकरण की मुखालफत और सशस्त्र बल अधिनियम की वापसी के लिए बनी एक राष्ट्रीय अभियान कमेटी' ने

चन्द साल पहले ठीक ही लिखा था हथियारबन्द उग्रवादी, एक दूसरे समुदाय के आपस के झगड़े, सुरक्षा बलों के साथ होने वाली मुठभेड़... और दूसरी तरफ पारम्परिक परिधान में नाचते हुए सुन्दर युवक एवं युवतियां। हकीकत यही रही है कि उत्तर पूर्व हम सभी के लिए परस्पर विरोधी प्रतिमाओं का कोलाज रहा

है, जो यही बताता है कि उसके पीछे छिपे यथार्थ के बारे में हम कितना कम जानते हैं।'

आखिर समाज के प्रबुद्ध तबके से जुड़े लोग भी क्यों नहीं जान पाये कि सात सूबों के इस सप्त भगिनियों (सेवन सिस्टर्स) के समूह में से एक की धरती पर फौजी बूटों तले कायम किये जा रहे 'बर्बरता के सामान्यीकरण' के खिलाफ बहन इरोम का 'एकला चलो' मार्का संघर्ष चल रहा है। वे कौन से कारण हैं कि मुल्क के शान्तिदूत कहकर नवाजे जाते फौजियों द्वारा मुल्क की अवाम के जनतांत्रिक अधिकारों के हनन के सिलसिले को लेकर हम सब बेखबर रहे या हुक्मरानों द्वारा फैलाये जाते तमाम गल्प का चुपचाप सेवन करते रहे कि 'मुल्क की एकता और अखण्डता' की हिफाजत के लिये इस किस्म की घटनाओं से बचा नहीं जा सकता।

कानूनी छूट का काला कानून : इसमें कोई दो-राय नहीं कि फर्जी मुठभेड़ों की जैसी खबरें इन क्षेत्रों में सुनने को मिलती हैं, वैसी खबरें उत्तर भारत के किसी अन्य क्षेत्र में सामने आतीं तो बवाल मचता लेकिन वे तमाम क्षेत्र जो 1958 से लागू किये गये 'सशस्त्र बल (विशेष अधिकार) अधिनियम के तहत आते हैं वहां गोया सुरक्षा बलों को इस किस्म के काण्डों को अंजाम देने की 'कानूनी छूट' मिली है। अगर आप इस अधिनियम के प्रावधानों पर नज़र डालें तो पता चलेगा कि इसके तहत सुरक्षा बलों को असीमित अधिकार दिये गये हैं और अगर वे ज़्यादातियां भी करें तो भी चाहकर भी लोग अदालत की शरण नहीं ले सकते हैं।

इस अधिनियम के तहत सरकार किसी क्षेत्र विशेष को अशांत क्षेत्र घोषित कर सकती है। अगर सरकार इस नतीजे तक पहुंचती है कि 'उपरोक्त क्षेत्र या उसका एक हिस्सा एक ऐसी अशांत या खतरनाक स्थिति में है कि नागरिक शासन की मदद के लिये फौजी बल का इस्तेमाल ज़रूरी है।' तब सम्बन्धित प्रशासक 'ऐसे क्षेत्र या उसके किसी हिस्से को जो किसी राज्य या केन्द्रशासित प्रदेश का हिस्सा है, अशान्त क्षेत्र घोषित कर सकता है।'

अधिनियम का सेक्शन चार किसी कमिश्नर अफसर, वारण्ट अफसर या नॉन कमिश्नर अधिकारी को ऐसे क्षेत्र में मिले अधिकार पर रौशनी डालता है। इसके तहत वह 'सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने के लिये गोली भी चला सकता है जिसमें किसी की मौत भी हो सकती है' कानूनी निर्देश के तहत वह 'हथियार ले जा रहे व्यक्तियों के खिलाफ यहां तक कि पांच व्यक्तियों के इकट्ठा होने पर प्रतिबन्ध का उल्लंघन करने पर' भी इस काम को अंजाम दे सकता है।

अगर उसकी राय में कोई घर या टीला आतंकवादियों की शरणस्थली हो या उसका इस्तेमाल होने की गुंजाइश हो तब वह उस ढांचे को गिरा सकता है। वह बिना किसी वारण्ट के किसी भी व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है, जिसने उसके मुताबिक कोई संज्ञेय अपराध किया हो या पर्याप्त सन्देह हो कि वह करने जा रहा है। सशस्त्र बल अधिनियम की धारा पांच यह कहती है कि इस तरह गिरफ्तार किये किसी भी व्यक्ति को बिना किसी विलम्ब के नज़दीकी पुलिस थाने में पहुंचाया जाना चाहिये, तो धारा छह बताती है कि इस अधिनियम के तहत काम कर रहे किसी भी व्यक्ति के खिलाफ कानूनी कार्रवाई केन्द्र सरकार की अनुमति से ही मुमकिन है।

अन्दाजा लगाया जा सकता है कि जहां शान्त क्षेत्रों में गोली चलाने के लिये सबडिवीजनल मजिस्ट्रेट या उनके ऊपर के किसी अधिकारी की अनुमति आवश्यक होती है वहीं ऐसे कथित 'अशान्त' इलाकों में एक अदद अधिकारी कितना निरंकुश हो सकता है। दूसरे साधारण नागरिकों के लिये अपने ऊपर हुए अत्याचार की जांच शुरू करवाने के लिये केन्द्र सरकार से गुहार लगाना कितना लम्बा, खर्चीला और पीड़ादायी अनुभव होता होगा।

पता नहीं कितने लोग जानते होंगे कि भारतीय अवाम के असन्तोष को काबू में रखने के लिये अंग्रेजों ने जिन दमनकारी कानूनों को लागू किया था, यह कानून भी उन्हीं का सुधरा हुआ संस्करण है जिसे 1958 में तत्कालीन लोकसभा में महज तीन घण्टे की चर्चा के बाद और राज्यसभा में महज चार घण्टे की चर्चा के बाद पास किया गया था। 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के दौरान सामने आये जनविप्लव को रोकने के लिये अंग्रेजों ने सशस्त्र बल (विशेष अधिकार) अध्यादेश 1942 जारी किया था।

सन 1953 में असम सरकार ने इसी की तर्ज पर असम मेण्टेनन्स ऑफ पब्लिक ऑर्डर एक्ट नागा एवं तुएनसंग पहाड़ियों में आपातकाल की घोषणा करते हुए जारी किया। 1955 में असम डिस्टर्ब एरियाज़ एक्ट असम अशांत क्षेत्र अधिनियम पारित हुआ। इसके बाद सशस्त्र बल (असम-मणिपुर)

विशेष अधिकार अध्यादेश मई 1958 में जारी हुआ जिसे इस देश की संसद ने सितम्बर में कानून में तब्दील किया। और इस तरह आज़ाद भारत में जनता को नियंत्रण में रखने के लिये अब तक बने तमाम कानूनों में सबसे दमनकारी कहे गये 'सशस्त्र बल (विशेष अधिकार) अधिनियम' का आविष्कार हुआ था।

विगत पांच दशकों से मणिपुर, असम तथा उत्तर पूर्व के तमाम इलाकों में जारी इस अधिनियम ने अवाम से प्रतिरोध करने, अपने हकों की बहाली के लिए कानूनी लड़ाई लड़ने या किसी भी किस्म की जनतांत्रिक गतिविधि करने का अधिकार गोया छीन सा लिया है। वे तमाम साधारण लोग जो शान्ति एवं सुरक्षा की ज़िन्दगी जीना चाहते हैं उन्हें इसके तहत आसानी से 'आतंकवादी' या पाबंदी लगाये गये आतंकवादी संगठनों से जुड़े होने के बारे में 'सन्देह' के दायरे में रखा जा सकता है।

मानवाधिकार की बहाली के लिये संघर्षरत कार्यकर्ता जो फौजी ज़्यादतियों का महज दस्तावेज़ीकरण कर रहे हैं या उसकी समाप्ति के लिये कोशिश में लगे हैं, उन्हें भी इसके तहत उठाया गया है, यातनाओं का शिकार बनाया गया है या मार दिया गया है। हकीकत यही है कि विगत पांच दशक से इस पर हो रहे अमल ने वहां के निवासी 380 लाख लोगों को आज भी अघोषित आपातकाल की स्थिति में रहने के लिये मज़बूर किया है।

कुछ वर्षों पहले बीबीसी के संवाददाता से बात करते हुए इरोम शर्मिला ने उल्लेख किया था "मेरी भूख हड़ताल मणिपुर की जनता की तरफ से है। यह कोई व्यक्तिगत लड़ाई नहीं है - यह प्रतीकात्मक है। वह सच्चाई, प्यार और अमन का प्रतीक है।"

इस बात का विशेष उल्लेख किया जाना ज़रूरी है कि एक तरफ जहां इरोम शर्मिला हिन्दोस्तां की हुकूमत के खिलाफ अपने असमान संघर्ष में पूरे जी जान से जुटी हैं वहीं उसके इस संघर्ष में कई सारे आत्मीयजन उसके पीछे मज़बूती से खड़े हैं। लेकिन शर्मिला चानू की 75 वर्षीय मां इरोम सखी ने इस दौरान जो कुछ झेला है, वह अकल्पनीय है। 2 नवम्बर 2000 के उस ऐतिहासिक दिन यानी अपनी बिटिया को आशीर्वाद देने के बाद से वह कभी अपनी बेटी से मिली नहीं हैं। अपने आंखों से टपकने वाले आंसुओं को रोकने की कोशिश किये बिना इरोम सखी ने एक पत्रकार को बताया था : 'यह मुमकिन है कि बिटिया को देख कर मेरे भावुक हो जाने से उसका संकल्प कमज़ोर पड़ सकता है। और मैं नहीं चाहती कि मेरी बिटिया इन्सानियत की बेहतरी के लिए छेड़ी गयी इस लड़ाई में हार जाये।'

भारत की लोकचित्र परंपराएं

■ सरिता चौहान

...पिछले अंक से जारी

बिहार के मिथिला क्षेत्र की मधुबनी पेंटिंग

मिथिला पूर्वी भारत की सबसे शुरुआती रियासतों में से एक थी। मिथिला को सीता का जन्मस्थान बताया जाता है। इसीलिए सीता का एक नाम मैथली भी था। यह एक विशाल मैदानी इलाका है जो उत्तर में नेपाल, दक्षिण में गंगा और पश्चिम में बंगाल तक फैला हुआ है। चंपारण, सहरसा, मुजफ्फरपुर, वैशाली, दरभंगा, मधुबनी, सुपौल, समस्तीपुर जिले और मुंगेर, बेगूसराय, भागलपुर तथा पूर्णिया जिलों के कुछ हिस्से मिथिला क्षेत्र में आते हैं।

मिथिला क्षेत्र में भी मधुबनी का इलाका इन चित्रों के लिए विशेष रूप से प्रसिद्ध रहा है। बाकी जगहों के मुकाबले मधुबनी में ये चित्र सबसे बड़ी तादाद में बनाए जाते रहे हैं। मधुबनी का शाब्दिक अर्थ होता है 'शहद का जंगल'। इस पौराणिक क्षेत्र में राम ने राजकुमारी सीता से विवाह किया था और माना जाता है कि राजा जनक ने ही अपनी बेटी सीता के विवाह के लिए चित्र बनाने का आदेश दिया था। यहां तक कि *रामचरितमानस* में तुलसीदास ने भी सीता और राम के विवाह के लिए बनाई गई मिथिला पेंटिंग्स का वर्णन किया है। इस विलक्षण जोड़े राम और सीता से प्रभावित होकर शिव की पत्नी गौरी ने भी विवाह की रस्मों में उपस्थिति की इच्छा व्यक्त की। वह उस *कोहाबर* या *कोहबर घर* को सजाना चाहती थीं जहां बैठकर *सुमंगलियां* इस दैवी जोड़े के लिए गीत गा रही थीं। इससे पता चलता है कि यह रस्म और यह चित्र परंपरा महाकाव्यों के समय से चली आ रही है।

मधुबनी पेंटिंग्स में तीन तरह के चित्र होते हैं *कोहबर घर*, *अरिपन* और *गोसाईं घर*। *कोहबर घर* नवदंपति को आशीर्वाद देने के लिए बनाया जाता है। यह चित्र नवविवाहित जोड़े के कमरे की साफ दीवारों पर बनाया जाता है। इस चित्र के लिए कच्चे रंगों और घर में बने *पिट्टा* यानी कपड़े से बनी कूची का

इस्तेमाल किया जाता है। इस चित्र में कमल (*पुराइन*), बांस के झुंड, मछलियां, परिंदे, संभोगरत सांप आदि चित्रित किए जाते हैं। सांपों के रतिलीन जोड़े को प्यार और प्रजनन क्षमता का प्रतीक माना जाता है। दुल्हन के परिवार, गांव और जाति की महिलाएं शादी के समय यह चित्र बनाती हैं।

कोहबर पेंटिंग में तस्वीरें ज्यादा बारीक होती हैं। इन तस्वीरों से समूचेपन का बोध होता है। कोहबर चित्रों में तालाब के जीवन को सबसे ज्यादा दोहराया जाता है। इसके लिए चोंच में पत्ती दबाए तोते जैसे विविध जीव दिखाए जाते हैं। इन चित्रों में मच्छरों को भी खुशी बिखरते हुए दिखाया जाता है। यहां के लोग तालाब और तालाब के जीवन को उत्पादक एवं संवर्धक शक्तियों से परिपूर्ण मानते हैं। ये चित्र उनकी इसी मान्यता का प्रतीक हैं। इन चित्रों में दूल्हा और दुल्हन को जनन क्षमता देने की दुआ मांगी जाती है।



कोहबर के सभी चित्र दूल्हा और दुल्हन के हित में माने जाते हैं। यहां के लोगों का विश्वास है कि ये चित्र पति-पत्नी के बीच आसक्ति और अमर प्रेम का प्रतीक हैं। कमल की छः पत्तियों पर दुल्हन का चेहरा बनाया जाता है और उसकी जनन क्षमता को स्वयं कमल से जोड़ दिया जाता है। यह कमल जीवन के स्रोत यानी तालाब में खड़ा होता है। इन चित्रों में गौरी पूजा का दृश्य भी दिखाया जाता है क्योंकि गौरी और शंकर को आदर्श जोड़ा माना जाता है। इसीलिए दुल्हन गौरी देवी की पूजा करती है क्योंकि गौरी देवी ने उसे यह पति दिया है। इन चित्रों में कई तरह के प्रतीक इस्तेमाल किए जाते हैं : बांस, विधि-बिधाता (एक दूसरे के सामने बैठी नर और मादा चिड़िया), नाग-नागिन (रतिलीन नर और मादा सांप) सूर्य-चंद्रमा तथा नौ ग्रह।

मिथिला में फर्श पर बनाए जाने वाले चित्र को *अरिपन* कहा जाता है। ये चित्र *अरवा* (कच्चा) चावल के घोल से बनाए जाते हैं। स्थानीय भाषा में चावल के घोल को *पिथर* कहा जाता

है। महिलाएं चंद्र कैलेंडर के अनुसार निर्धारित पवित्र दिनों में फर्श पर *अरिपन* चित्र बनाती हैं। यहां की अविवाहित लड़कियां सुयोग्य पति की कामना करते हुए *गौरी* और *शिव* की पूजा करती हैं। इस उत्सव को *तुसारी पूजा* कहा जाता है। इस मौके पर भी चावल से बने सफेद, पीले और लाल रंग से चित्र बनाए जाते हैं। अलग-अलग मौकों के हिसाब से *अरिपन* चित्र भी अलग-अलग किस्म के होते हैं।

गोसाईं घर श्रेणी की पेंटिंग्स काफी व्यापक होती हैं। यह चित्र उस कमरे की दीवार पर बनाया जाता है जहां *कुल देवता* का वास होता है। हर परिवार का अपना एक कुल देवता होता है। जहां एक तरफ *कोहबर घर* केवल ब्राह्मणों और कायस्थों (उच्च जातियों) में ही पाया जाता है वहीं दूसरी तरफ *गोसाईं घर* पेंटिंग सभी जातियों के परिवारों में पाई जाती है क्योंकि कुल देवता की अवधारणा में सभी का विश्वास होता है और सभी परिवार उन्हें अपने घर की दीवारों पर चित्रित करते हैं।

जब महिलाएं चित्रकारी करने लगती हैं तो कुछ दूसरी महिलाएं किस्से-कहानियां सुनाती हैं या गीत गाती रहती हैं। मिसाल के तौर पर, कथा बांचने की कला में सिद्धहस्त बुजुर्ग और अनुभवी महिला मधुश्रावणी के मौके पर नवविवाहित जोड़े को लगातार 13 से 15 दिन तक कथा सुनाती है। वह बड़े सजीव ढंग से कहानियां सुनाती है। ये कहानियां पृथ्वी की उत्पत्ति, *मनसा देवी* के प्रताप और *पतिव्रत कथा* आदि पर केंद्रित होती हैं। चित्र भी इन्हीं कहानियों पर ही आधारित होते हैं।

यहां के त्यौहारों में गीत, नृत्य, अनुष्ठानिक चित्र और मंत्रों का उच्चारण आदि चलता है।

मधुश्रावणी का उत्सव बरसात में सावन के महीने में मनाया जाता है। उस समय सांप बड़ी संख्या में दिखाई देने लगते हैं। लोग पूजा-पाठ, गीतों, और कथाओं के ज़रिए अपने देवी-देवताओं तथा सर्प देवता को प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं। जहां बैठकर कथा सुनाई जाती है वह जगह अनुष्ठानिक चित्रों से सजी होती है।

दीवारों पर बनाई जाने वाली ये पेंटिंग्स काफी रंग-बिरंगी होती हैं। इन चित्रों को मिट्टी से लिपी दीवारों पर कच्चे रंगों से बनाया जाता है। चित्र शुरू करने से पहले औरतें देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना करती हैं। इन चित्रों के लिए प्रकृति और प्रचलित मिथकों से विषय लिए जाते हैं। इन चित्रों में *कृष्ण*, *राम*, *शिव*, *दुर्गा*, *लक्ष्मी*, *सरस्वती*, *सूर्य* एवं *चंद्रमा* और *तुलसी* के पौधे को सबसे ज्यादा चित्रित किया जाता है। बीच-बीच में छूट जाने वाली खाली जगहों को भरने के लिए फूल-पत्तियों, जानवरों और चिड़ियों के चित्र बनाए जाते हैं। इस शैली के चित्रों में बमुश्किल कोई खाली जगह बचती है।

अब इन मिथिला या मधुबनी पेंटिंग्स को दीवार या फर्श पर बनाने के बजाय कागज़ या कैनवास पर बनाने का चलन भी

बढ़ता जा रहा है।

1966-68 में लंबे समय तक पड़े सूखे से मधुबनी और मिथिला के बहुत बड़े इलाके में एक भारी पर्यावरणीय संकट खड़ा हो गया था। इससे लोगों की आर्थिक हालत पर भी बहुत बुरा असर पड़ा। यहां की कृषि आधारित अर्थव्यवस्था बुरी तरह तहस-नहस हो उठी। ऐसे में लोगों को आजीविका के वैकल्पिक स्रोत मुहैया कराने की कोशिश शुरू हुई। इसके लिए अखिल भारतीय हस्तशिल्प बोर्ड ने यहां की महिलाओं को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया कि वह दीवारों और फर्श के बजाय कागज़ पर चित्र बनाएं। इस प्रकार इन महिलाओं को कला प्रेमियों के सामने अपनी कला के प्रदर्शन का मौका मिला और दुनिया भर में उनकी कलाकृतियों की मांग बढ़ने लगी।

शुरुआत में केवल कुछ ब्राह्मण महिलाओं को ही इस चित्रकारी का मौका दिया गया मगर लगभग एक दशक बाद कायस्थ जाति की महिलाएं भी कागज़ पर चित्र बनाने लगीं। उन्होंने अपनी एक नई शैली भी विकसित कर ली। सूखे के दौरान निचली जाति की महिलाएं खेतों में अपने पति के साथ या संपन्न घरों में नौकरानी के तौर पर काम कर रही थीं इसलिए उन्हें चित्रकारी का ज़्यादा अवसर नहीं मिल पाया। दूसरी तरफ जो ब्राह्मण महिलाएं कभी घर से बाहर नहीं निकल पाती थीं उन्हें भी अपना घर चलाने के लिए कुछ न कुछ काम करना पड़ा। ऐसे हालात में ब्राह्मण महिलाओं का ध्यान सबसे पहले महात्मा गांधी के चरखे पर गया। यह उनके लिए आजीविका अर्जित करने का एक सम्मानजनक साधन था। बाद में बहुत सारी महिलाएं मिथिला पेंटिंग्स के ज़रिए भी आजीविका अर्जित करने लगीं।

मिथिला क्षेत्र की ब्राह्मण महिलाएं अपने चित्रों में गुलाबी, हरे, पीले, नारंगी, नीले और काले रंग का ज़्यादा इस्तेमाल करती थीं। उनके चित्रों में छाया रंग नहीं होते थे। वह मुख्य रूप से *कोहबर घर* और देवी-देवताओं की तस्वीरें बनाती हैं। हिंदू पौराणिक ग्रंथों और मिथकों से परिचय तथा रंगों की बहुतायत के सहारे उन्हें अपने चित्रों में हिंदू देवी-देवताओं और मिथकों को सजीव ढंग से चित्रित करने का एक अच्छा अवसर मिला है। उनके बहुत सारे चित्र अलग-अलग मुद्राओं में बैठे हिंदू देवी-देवताओं और उनके पवित्र प्रतीकों को दर्शाते हैं।

ब्राह्मण जाति की कुछ महिलाओं ने इस कला को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनमें सीता देवी और उनके बाद बावा देवी एवं उनकी बेटी सरिता देवी के नाम प्रमुखता से लिए जाते हैं।

यहां के कायस्थों के पास ज़मीन नहीं है। वह एक भूमिहीन समुदाय हैं। इस समुदाय की महिलाओं ने भी अपनी आमदनी में इजाफे के लिए इस चित्रकारी को अपनाया है। सत्तर के दशक में कायस्थ महिलाओं द्वारा बनाए गए चित्रों को

बड़े पैमाने पर प्रशंसा मिलने लगी थी। अब कायस्थ महिलाओं ने लकीरों के सहारे इन पेंटिंग्स में एक नई शैली विकसित कर दी है। उनके चित्रों में लाल और काले रंग का इस्तेमाल काफी किया जाता है और वह दबे हुए या हल्के रंगों को ज़्यादा पसंद करती हैं। कोहबर घर पेंटिंग्स इस परंपरा की विशेषता रही हैं। इन चित्रों में कमल के पौधे, बांस के झुंड, मछलियों, कछुए, तोते, चिड़ियों और प्रजनन संबंधी प्रतीकों को चित्रित किया जाता है। इसके अलावा वह अपने गांव के जीवंत या धार्मिक दृश्यों को भी बड़ी बारीकी से चित्रित करती हैं। स्वर्गीय गंगा देवी, कर्पूरी देवी, पुष्पा कुमारी, महासुंदरी देवी और गोदावरी दत्ता इस शैली की प्रमुख कलाकार रही हैं।

मिथिला पेंटिंग्स की ये दोनों शैलियां यहां की उच्च जाति महिलाओं की देन हैं और परंपरागत मिथिला कला का मजबूती से प्रतिनिधित्व करती हैं।

मधुबनी पेंटिंग्स को व्यावसायिक स्तर पर लाने वाला तीसरा समूह दुसाध या हरिजन महिलाओं का रहा है। इन महिलाओं ने अस्सी के दशक में व्यावसायिक स्तर पर चित्र बनाना शुरू किया। इस समूह की महिलाएं परंपरागत रूप से अनुष्ठानिक उद्देश्यों के लिए तथा घर को सजाने के लिए कई तरह की पेंटिंग बनाती थीं। ब्राह्मणों और क्षत्रियों की देखा-देखी उन्होंने भी अपने चित्रों में गोदना तथा अन्य चमकीले रंगों का इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। उनके चित्रों की शैली पिछली दोनों शैलियों से बिल्कुल भिन्न थी। इन चित्रों में लकीरें, लहरें, घेरे, टहनियां और घोड़े बड़ी संख्या में चित्रित किए जाते हैं। उनकी इस शैली ने अमूर्त चित्रों की संभावना का रास्ता भी खोल दिया। उनकी पेंटिंग्स ज़्यादा विशिष्ट और सजी-धजी दिखाई देती हैं। उनके चित्रों को भी काफी पसंद किया जाता है। जमुना देवी और ललिता देवी प्रसिद्ध हरिजन चित्रकारों में गिनी जाती हैं।

निचली जाति की महिलाएं गोदना पेंटिंग भी बनाती हैं। चित्रकारी की इस तकनीक में हाथ ऊपर उठाए हुए लोग और अलग-अलग आकार के हाथियों को बहुतायत से चित्रित किया जाता है। शुरुआत में ये चित्र बहुत अस्पष्ट होते थे। बाद में सफेद कागज पर गोबर की लिपाई करके उस पर चित्र बनाए जाने लगे। इस कैनवास पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक ही आकार के छोटे-छोटे चित्र बनाए जाते हैं। इन चित्रों में दुसाध

समुदाय के देवता, भगवान सल्लेख और उनके भाई, तथा उनके हाथियों और घोड़ों को ज़्यादा चित्रित किया जाता है। इन चित्रों में ब्राह्मणों और कायस्थों के देवताओं को चित्रित नहीं किया जाता है।

मिथिला के कलाकार रंगों के लिए प्रकृति पर आश्रित रहते हैं। वह मिट्टी, पेड़ों की छाल, फूलों और जामुन व झरबेरी आदि फलों से रंग बनाते हैं। आजकल पिसे हुए कृत्रिम रंग भी मिलने लगे हैं और ज़्यादातर कलाकार उन्हें ही पसंद करते हैं। इन रंगों को गाय के दूध में मिलाकर इस्तेमाल किया जाता है। रंग तैयार हो जाने पर दो तरह की कूचियां इस्तेमाल की जाती हैं। एक कूची बांस की टहनियों से बनी होती है जिससे बारीक चीजें बनाई जाती हैं। दूसरी कूची अलग-अलग चित्रों के बीच मौजूद खाली स्थानों को भरने के लिए इस्तेमाल की जाती है। यह कूची टहनी पर कपड़ा बांध कर बनाई जाती है।

मिथिला में महिलाएं हमेशा दीवारों पर चित्र बनाती आई हैं। अब जबकि कागज पर बने चित्र परिवार के लिए आय का साधन भी बन गए हैं तो पुरुष भी इस कला को अपनाने लगे हैं। अब महिलाएं और पुरुष, दोनों ही ये चित्र बनाते हैं।

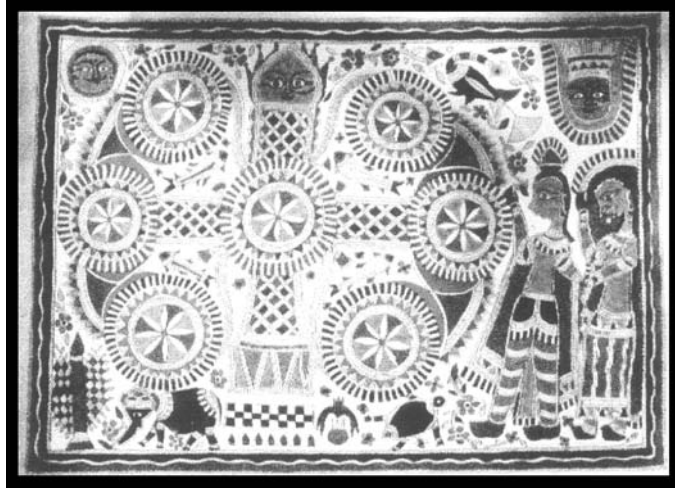
इस इलाके में तांत्रिक पेंटिंग भी बनती हैं। इस किस्म की पेंटिंग यहां केवल कृष्णानंद झा बनाते हैं। आम लोग यह पेंटिंग

इसलिए नहीं बनाते क्योंकि उनका मानना है कि तांत्रिक कला केवल ऐसे व्यक्ति को ही अपनानी चाहिए जो तंत्र के बारे में गहरा ज्ञान रखता हो अन्यथा तांत्रिक प्रतीकों के चित्र बनाने से चित्रकार विपत्ति में भी फंस सकता है। कृष्णानंद झा एक तांत्रिक पुजारी के बेटे हैं। उन्होंने अपने भाई बटोही झा के साथ मिलकर देवी-देवताओं, खासतौर से विष्णु के दस

अवतारों के चित्र बनाना शुरू किया था। इन चित्रों के नीचे संबंधित तांत्रिक यंत्र होते हैं। बाद में बटोही झा ने तो तांत्रिक चित्र बनाना बंद कर दिया परंतु कृष्णानंद झा अभी भी ये चित्र बना रहे हैं।

अपनी विशिष्ट शैली के कारण पहले इन चित्रकारों की जाति आसानी से पता चल जाती थी मगर अब उपरोक्त शैलियों में पाए जाने वाले फर्क खत्म हो रहे हैं। बाज़ार की मांग के कारण अब चित्रकार किसी खास शैली से चिपक कर नहीं रहते।

क्रमशः जारी...



बृहत्तर भारत

■ मुक्तिबोध

...पिछले अंक से जारी

प्राचीन काल में भारत शेष जगत् से गहरा संपर्क रखता था। भारतीय संस्कृति का विस्तार दक्षिण-पूर्वी एशिया, मध्य एशिया तथा पूर्वी एशिया के देशों में हुआ। वहां भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन तथा विद्याओं के अपने केंद्र बने। यह विस्तार शांति तथा सद्भावना, मैत्री तथा मानव-कल्याण की प्रेरणा द्वारा ही हो सका। भारत का आध्यात्मिक संदेश दूर-दूर के देशों में फैल गया।

फलतः, इन विभिन्न देशों में जातीयता का भी उत्कर्ष हुआ। न केवल संस्कृत, वरन् स्थानीय जन-वाणियां भी उन्नति करने लगीं तथा समृद्ध हो उठीं। दक्षिण-पूर्वी एशिया में यह विशेष रूप से हुआ। इस प्राचीन गौरव-गाथा को जाने बिना, भारतीय संस्कृति के इतिहास का ज्ञान भी अधूरा रहता है।

उत्तर एशिया में भारतीय संस्कृति के मुख्य प्रभाव-केंद्र थे-खोतन (खोतन), कुचि (कुचर), अग्निदेश (काराशहर), कोचांग (तुरफान) तथा इनके अतिरिक्त शैल देश (काशगर), चल्पद (शानशान), थरुक (पोलकिया) चौकुक (यारकन्द)। इन आठ राज्यों में खोतन और कुचि सर्व प्रमुख हैं। ये सब क्षेत्र मध्य एशिया से लेकर सिडक्याड होते हुए मंगोलिया तक फैले हुए हैं। इन सब में कुछ सामान्य बातें पायी जाती हैं। बौद्ध धर्म के विहार इन सब में थे। इन विहारों की संख्या बहुत बड़ी थी। भिक्षुओं की तादाद हज़ारों तक पहुंचती थी। संस्कृत भाषा धर्म-भाषा होने के कारण महत्वपूर्ण थी। साथ ही, संस्कृत भाषा का भी खूब प्रयोग होता था। पहले खरोष्ठी लिपि का प्रचार हुआ, बाद में ब्राह्मी लिपि ने भी प्रवेश किया। बहुत-से प्राचीन संस्कृत ग्रंथ इस क्षेत्र में उपलब्ध हुए हैं। स्थानीय भाषाओं में भी ग्रंथों का प्रणयन हुआ।

खोतन

खोतन बौद्ध धर्म का बहुत बड़ा केंद्र था। चौथी सदी में लगभग सारा खोतन राज्य बौद्ध हो गया। खोतन के विहार शिक्षा के केंद्र थे। इन केंद्रों में बड़ा ग्रंथालय रहता था।

यहां बौद्ध विहारों तथा चैत्यों के बहुत-से खंडहर प्राप्त हुए हैं। मूर्तियां और प्रतिमाएं मिलीं, साथ ही चित्र भी। अनेकों ग्रंथ मिले। ये ग्रंथ हस्तलिखित हैं। चीन में धर्म-प्रचार

का बहुत कुछ श्रेय खोतन को है। कनिष्क के साम्राज्य में खोतन भी शामिल था। आठवीं सदी के बाद तुर्कों ने गौरवशाली खोतन को नष्ट कर दिया और तब वहां की जनता मुसलमान हो गयी।

तीसरी सदी में खोतन के राजवंश के नाम भारतीय थे, जैसे विजयसम्भव। तिब्बती अनुश्रुतियों में विजयसम्भव का उल्लेख है। विजयसम्भव के वंश में विजयवीर्य नामक राजा ने अनेकों विहारों और चैत्यों का निर्माण कराया। विजयसम्भव तथा विजयवीर्य के गुरु भारतीय बौद्ध भिक्षु थे।

कुचि का राज्य भी भारतीय संस्कृति का महान केन्द्र था। चीनी अनुश्रुति के अनुसार, वहां के विहारों और चैत्यों की संख्या दस हज़ार थी। ये विहार बहुत सुन्दर, बहुत भव्य थे। इनमें हज़ारों भिक्षु रहते थे। कई भिक्षुणियां राजघरानों की थीं।

कुचि के राजवंश के नाम भारतीय थे। जैसे-सुवर्ण, पुष्प, हरिपुष्प, स्वर्णदेव, हरदेव इत्यादि। कुचि मध्य एशिया का भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र तथा उपनिवेश था।

कुमारजीव

यहां हम कुमारजीव का उल्लेख करना नहीं भूल सकते। उसकी जीवन-कथा जितनी रोमांटिक है उतनी ही प्रेरणादायक है।

भारत में एक राजकुमार था, जिसका नाम था कुमारायन। युवावस्था में ही वह बौद्ध भिक्षु बन गया। अब वह भारत से यात्रा करते-करते कुचि पहुंचा। (संस्कृति में कुचि को कुशद्वीप कहते थे) था तो वह बौद्ध भिक्षु, किंतु वह अत्यंत सुंदर था। कुचि के राजा की बहन जीवा उस पर मोहित हो गयी, वह उससे प्रेम करने लगी। कुमारायन के हृदय में भी प्रेम का उदय हुआ। फलतः, उसने उससे विवाह कर लिया। उनके दो पुत्र हुए। एक का नाम था कुमारजीव-दूसरे का था पुष्पदेव।

कुमारजीव ज्यों ही सात वर्ष का हुआ, उसकी माता जीवा भिक्षुणी हो गयी। वह अपने पुत्र कुमारजीव को लेकर भारत आयी। वहां वह काश्मीर में जा बसी। काश्मीर के राजा का भाई बन्धुदत्त बौद्ध धर्म का बड़ा पंडित था। उसका नाम सर्वत्र था। उसके चरणों में बैठकर कुमारजीव ने बौद्ध शास्त्र पढ़े। कुमारजीव प्रकांड पंडित बन गया। बौद्ध धर्म की

शिक्षा के उपरांत उसे वैदिक धर्म के तत्व समझने की इच्छा हुई।

उन दिनों मध्य एशिया में शैलदेश (काशगर) ब्राह्मण साहित्य तथा दर्शन का केंद्र समझा जाता था। कुमारजीव काशगर आया। वहां ब्राह्मण धर्म की सारी विद्याएं पढ़कर, वह चोक्कुक (यारकन्द) पहुंचा। ब्राह्मण दर्शन के तर्कों और युक्तियों का खंडन जिन बौद्ध विद्वानों ने किया था, उनमें नागार्जुन, आर्यदेव जैसे सिद्ध आचार्य भी थे। उनके ग्रंथों का विशेष अध्ययन यारकन्द में हुआ करता था। यारकन्द में इन आचार्यों का अध्ययन करके कुमारजीव ने महायान संप्रदाय में प्रवेश किया। इस प्रकार बौद्ध और ब्राह्मण ज्ञान का एकाधिकारी होकर कुमारजीव अपनी मातृभूमि कुचि में वापिस आया। उसकी विद्वता की कीर्ति फैली। शीघ्र ही कुचि नगर शिक्षा का महान केन्द्र बन गया।

अब हुआ यह कि चीन ने कुचि के राज्य पर हमला कर दिया। उसे सर कर चुकने के बाद, बड़े-बड़े लोग गिरफ्तार कर लिये गये। कुमारजीव भी चीनी अधिकारियों द्वारा बंदी बनाकर चीन लाया गया।

किंतु, उसकी कीर्ति और तेजस्विता जेल की दीवारों को पार कर गयी। उसका नाम सुनकर चीनी सम्राट ने उसे अपनी सभा में बुलाया। चीनी सम्राट कुमारजीव से बहुत प्रभावित हुआ। उसने उसका बड़ा सत्कार किया। कुमारजीव केवल संस्कृत का ही नहीं वरन् चीनी भाषा का भी प्रकाण्ड पंडित था। सम्राट ने उसे कहा कि वह भारत के प्रामाणिक बौद्ध ग्रंथों का चीनी भाषा में अनुवाद करे। सम्राट ने उसकी सहायता के लिए अनेक चीनी विद्वान नियुक्त किये।

अपने कार्य का युगांतकारी महत्व कुमारजीव ने अच्छी तरह समझ लिया। उसने अपनी सहायता के लिए भारत तथा काश्मीर से बहुत-से बौद्ध पंडित बुलवाये-जिनमें गौतम संघ देव, धर्मयश, गुणवर्मन, गुणभद्र, बुद्धवर्मन, बुद्धयश तथा पुण्यगात का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कुमारजीव के उपरांत इन्हीं महापंडितों ने चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार किया।

चीन में इन विद्वानों का स्थान बहुत ऊंचा है। इनका नाम सुनकर चीनी जनता आज भी श्रद्धा और सम्मान से सिर झुका लेती है। ये विद्वानगण धुन के पक्के थे। साहसी और कर्मण्य थे, विद्वान और भावुक थे, करुणा और जिज्ञासा की मूर्ति थे। इनमें से कईयों ने चीनी नाम भी धारण कर लिये। वे चीनी बन गये। वहीं मरे। आज हालत यह है कि जिन संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद इन्होंने किया, वे भारत में नष्ट हो गयी हैं। वे चीनी अनुवाद के रूप में ही हैं, उनको संस्कृत भाषान्तर अब करवाया जा रहा है। विश्व के महान पंडित कुमारजीव का देहांत सन् 412 में चीन में ही हुआ।

सिड्क्याड का वह हिस्सा जो मंगोलिया की मरुभूमि से लगा हुआ है वहां उइगुर नामक जाति रहा करती थी। वह तुर्क जाति थी। कुमारजीव के कुचि राज्य में भी वही रहती थी। उइगुर बौद्ध थे। वह तुरफान में भी रहती थी। तुरफान मंगोलिया की मरुभूमि के निकट एक नगर था। इस क्षेत्र में तुरफान सरीखे अनेक नगरों के ध्वंसावशेष पाये जाते हैं। इन ध्वंसावशेषों में संस्कृत, तुर्की, चीनी और ईरानी हस्तलिखित ग्रंथ मिले हैं। वहां के राजा चाउ ने सन् 480 में मैत्रेय का एक मंदिर बनवाया था।

काशनगर

इस क्षेत्र में कनिष्क के काल में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। इसके पहले वह ब्राह्मण धर्म का केंद्र था। फ़ाहियान 400 ईसवी में यहां आया था। उसने बताया है कि यहां एक विहार में एक हजार भिक्षु निवास करते थे।

तुन-व्हाड

अन्य स्थानों में भी बौद्धधर्म का और भारतीय संस्कृति का बहुत प्रचार था। चीन की सीमा के पास एक पर्वतमालिका है। यहां गुफा-मंदिर है। इन गुफा-मंदिरों में सिद्धार्थ गौतम बुद्ध के जीवन के चित्र हैं-जैसे कि अजंता में हैं। अंतर यही है कि उनकी कला पर चीनी, यूनानी, तुर्की, ईरानी प्रभावों का सम्मिश्रण है। इन गुफाओं को सहस्र-बुद्ध गुहा-विहार कहते हैं। इन गुहाओं में अनेक बुद्ध मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं।

सिवाय इसके, वहां संस्कृत, तुर्की, उइगुर, तिब्बती और चीनी ग्रंथों का अपूर्व भंडार उपलब्ध हुआ। ये सब ग्रंथ बौद्ध धर्म तथा संस्कृति के संबंध में हैं। उनसे इतिहास पर भी प्रकाश पड़ता है। यूरोपीय विद्वान उन्हें उठा-उठाकर अपने-अपने देश ले गये और आज तक उन ग्रंथों की सूची भी नहीं बन पायी। इन ग्रंथों में खरोष्ठी और ब्राह्मी लिपि का भी प्रयोग किया गया।

तुनव्हाड के समान मध्य एशिया के अन्य क्षेत्रों में भी, पुस्तकों के भंडार मिले हैं-विशेषकर कुचि और काशगर में, जिनसे यह स्पष्टतः सूचित होता है कि भारतीय संस्कृति का प्रसार और विकास कितने दूर-दूर के क्षेत्रों में हुआ। तुनव्हाड जैसी गुहाओं का निर्माण छठी सदी से लेकर चौदहवीं सदी तक होता रहा और अनेकानेक मूर्तियां और चित्र, चैत्य और विहार बनते रहे। सहस्रबुद्ध गुहा विहार भी इसी तरह बना।

दूसरे शब्दों में, आठवीं सदी तक पश्चिमी एशिया से लेकर तो पूरे पूर्वी एशिया तक, यानी तुर्कस्तान से लेकर चीन तक, बौद्ध धर्म का प्रचार था। तुर्क जाति पूरी बौद्ध थी। बाद में आठवीं सदी के बाद तुर्क जाति के मध्य-एशियायी तथा पश्चिमी-एशियायी खंड ने इसलाम अंगीकार कर लिया। किंतु, पूर्व एशिया के तुर्क जैसे-उइगुर बौद्ध बने रहे। तुर्क

जाति मंगोल जाति की ही एक शाखा है।

बृहत्तर भारत का विचार करते हुए हम सीरिया और मैसापोटामिया को भी नहीं भूल सकते। वहां प्राचीन काल में बहुत-सी भारतीय बस्तियां थीं। किंतु, ईसाई आक्रमणों से वे नष्ट-भ्रष्ट हो गयीं। उनके ध्वंसावशेष अभी भी कहीं-कहीं पाये जाते हैं।

यहां यह ध्यान में रखना होगा कि भारत के उत्तर में जो बौद्ध राज्य या बौद्ध सांस्कृतिक केंद्र बने, उनमें थोड़े-बहुत भारतीय तत्व होते हुए भी, मुख्यतः वे अ-भारतीय थे। तुर्क, मंगोल, शक, हूण, आदि जातियों के ये लोग थे। इनमें से जो पश्चिम और मध्य-एशियायी थे, कालांतर में मुस्लिम बने, शेष बौद्ध बने रहे।

दक्षिण-पूर्वी भारतीय उपनिवेश

दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारतीय बस्तियों का श्रेय मुख्यतः व्यापारियों को है-विशेषकर तमिल व्यापारियों को। व्यापारियों के पीछे धर्म-प्रचारक गये-बौद्ध और ब्राह्मण। इनका उद्देश्य वहां जाकर कोई साम्राज्य स्थापित करना नहीं था। वे शांतिपूर्ण उद्देश्यों से वहां पहुंचे थे।

धीरे-धीरे वहां की जनता ने भारतीय धर्म और संस्कृति अपना ली। अपना तो ली, किंतु उसमें उसने अपने तत्व भी डाल दिये। वहां की भाषाओं में खूब संस्कृत शब्द आ गये। हमारे देवता उनके देवता बन गये। यह सब होते हुए भी, वहां के राज्यों और राजवंशों को हम भारतीय नहीं कह सकते, क्योंकि वे भिन्न जाति के लोग थे-मलाया, ख्मेर आदि जातियों के वे लोग थे, और हैं। भारतीय संस्कृति को ग्रहण करके उन्होंने अपना स्वतंत्र विकास किया। यह ठीक उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार सिङ्क्याड तथा अन्य पूर्व-पश्चिम के देश भारतीय प्रभाव में आकर भी भारतीय नहीं हुए। यह बात महत्वपूर्ण है।

यह सही है कि तमिल व्यापारियों ने वहां मुख्य-मुख्य केंद्रों में अपनी बस्तियां बसायीं, धर्म-प्रचार करने वालों ने अपना प्रभाव बढ़ाया, किंतु भारतीय राज्य-शक्ति, संगठित रूप से अथवा असंगठित रूप से वहां कभी नहीं पहुंची। किसी राजनैतिक उद्देश्य से भारत विदेशों में नहीं गया। आज भी मलाया प्रायद्वीप में भारतीय जनता लगभग एक तिहाई है। ये तमिल भाषाभाषी हैं। दक्षिण ब्रह्मा, मलाया और सुमात्रा को, प्राचीन काल में भारत में स्वर्ण भूमि कहा जाता। भारतीयों ने शुरू में नदियों के किनारों पर अपनी बस्तियां स्थापित की होंगी, वे रवद्विन, इरावती, साल्विन, मेकांग तक पहुंचे होंगे। इस प्रकार वे, बर्मा से लेकर वियतनाम तक पहुंच गये होंगे, जल-मार्ग के द्वारा, स्थल-मार्ग के द्वारा भी। धीरे-धीरे, भारतीय संस्कृति का प्रभाव बढ़ा होगा, और ये पुराने भारतीय उपनिवेश उस देश की जनता में घुलमिल गये होंगे।

इस प्रकार के मेल से जो सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना

वहां उत्पन्न हुई, उसने राजनैतिक रूप भी विकसित कर लिया और कई राज्य बन गये।

इनमें से एक प्रभावशाली राज्य आधुनिक कम्बोडिया में था। जब भारतीय सुदूर अतीत में वहां पहुंचे थे तो वहां के स्थानीय जन अभी भी असभ्यावस्था में थे। भारतीय संस्कृति का प्रथम प्रसार वहां कौण्डिव्य नामक ब्राह्मण ने किया। वह वैदिक धर्मानुयायी था। वही वहां का सबसे पहला राजा हुआ। आगे चलकर, उसका राज्य फान-ची-मान नामक व्यक्ति के हाथ में चला गया। ईसा की चौथी सदी के अंत में, फिर से कौण्डिव्य नामक एक ब्राह्मण वहां पहुंचा। वहां की जनता ने उसे अपना राजा घोषित किया। उसके बाद, जयवर्मन और जयवर्मन के अनन्तर नागवर्मन का नाम मिलता है। उसने सन् 480 में अपना एक दूत चीन के बादशाह के यहां भेजा था। उसके बाद रुद्रवर्मन राजा बना। उसने सन् 517 से 539 तक कई राजदूत चीन भेजे। यहां शैवधर्म का प्रचार हुआ था। यह राज्य कुछ ही सालों बाद, चम्पा नामक राज्य में विलीन हो गया।

चम्पा

कम्बोडिया के पूर्व में चम्पा नामक एक प्रबल सत्ता सामने आयी। यह राज्य उन्नीसवीं सदी तक कायम था। इस राज्य का प्रारंभिक इतिहास हम नहीं जानते। ईसा की दूसरी सदी में इस राज्य के एक राजा श्रीमार का नाम हमें मिलता है। इस राजा के पास एक विशाल जल-सेना थी। उसने चीन पर हमला करके उसका टांगकिंग प्रान्त सर कर लिया था। वह चीन से हमेशा लड़ता रहा। आगे चलकर, चम्पानरेश फान-बेन नामक एक राजा ने सन् 347 में उत्तरी विएतनाम के उपजाऊ हिस्से भी छीन लिये। आगे चलकर, फान-हु-टा अर्थात् धर्म-महाराज के श्री भद्रवर्मन ने चीन के और हिस्से छीने तथा चम्पा राज्य की सीमा थान-हो पहाड़ तक फैला दी। श्री भद्रवर्मन शैव था। उसने मायसन नामक स्थान पर एक विशाल मन्दिर बनाया।

चीन ने ज्यों ही अपनी ताकत समेट ली, चम्पा को झुकना पड़ा। चम्पा चीन की अब खुशामद करने लगा। वहां से चीन को उपहार भेजे जाने लगे। आगे चलकर, उन्नीसवीं सदी में, अनाम नामक जाति ने चम्पा को जीत लिया; इसलिए इस प्रदेश का नाम अनाम हुआ। इन राज्यों के फलस्वरूप थाईलैंड (सयाम), लाओस, कम्बोडिया, विएतनाम आदि प्रदेशों में भारतीय धर्म, संस्कृति, आचार-विचार, रीति-नियम फैल गये। स्थानीय जनता के प्राचीन विश्वासों से सम्मिलित होकर, उन्होंने अपनी जातीयता (राष्ट्रीयता) का विकास किया। साहित्य तथा संस्कृति की भाषा संस्कृत ही रही, जो वहां खूब फली-फूली। उसमें नये-नये ग्रंथ बनने लगे। किंतु, साथ ही जनता की अपनी वाणी का भी बहुमुखी विकास हुआ।

भारतीय शिल्प तथा चित्रकला की वहां नकल नहीं की गयी। किंतु भारतीय संस्कृति से प्रेरणा प्राप्त करके, भारतीय शिल्प और चित्रकला ही का नया मोड़, एक नया रूप दिया गया। इस क्षेत्र में ब्राह्मण धर्म का खूब प्रचार हुआ।

ये राजा भारत की तीर्थयात्रा करते। चम्पानरेश इन्द्रवर्मा तृतीय बड़ा पंडित था। उसने भारत की तीर्थ यात्रा की थी।

श्रीक्षेत्र

इनके अतिरिक्त ब्रह्म देश में प्रोम के पास श्रीक्षेत्र नामक एक राज्य था। ज्ञात होता है कि उसका राज्य पूरे मलय प्रायद्वीप तक पहुंचा हुआ था। आधुनिक उत्खननों ने बहुत-सी बातें खोजकर निकाली हैं। वहां बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ, जो वहां से सारे ब्रह्म देश में छा गया।

मलाया

मलाया प्रायद्वीप में बहुत-से भारतीय राज्य थे। इन राज्यों के ध्वंसावशेष अभी भी पाये जाते हैं। विष्णु, गरुड़ आदि की मूर्तियां, अनगिनत बौद्ध मंदिर तथा बहुत-से शिलालेख मिले हैं।

श्रीविजय

सुमात्रा को प्राचीन काल में स्वर्णभूमि कहा करते थे-उसके राजनैतिक-सांस्कृतिक क्षेत्र के अंतर्गत दक्षिण बर्मा भी आता था। सुमात्रा में श्रीविजय नामक नगर में ईसा की चौथी सदी में एक राज्य स्थापित हुआ। उसने शीघ्र ही अपने हाथ-पांव फैलाये। सन् 684 में उसके बौद्ध धर्मावलम्बी राजा जयनाग ने जावा (यवद्वीप) को जीतने के लिए सेनाएं भेजीं। कम्पर नदी पर स्थित यह नगर सदियों तक उन्नति करता रहा। वह धर्म, संस्कृति और विज्ञान का बड़ा केन्द्र था। चीनी यात्री इत्सिंग 688 से 695 तक यहां रहा था। सुमात्रा में बहुत-से शिलालेख संस्कृत भाषा में मिलते हैं, जिनमें यहां के राजाओं की कीर्ति-कथा अंकित है।

यवद्वीप (जावा)

चीनी कथाओं के अनुसार ईसवी पूर्व 65 में ही, यहां भारतीयों ने बसना शुरू कर दिया था। सन् 132 में देववर्मा नामक एक राजा ने चीन को अपना राजदूत भेजा था। फाहियान यहां आया था। उस चीनी यात्री ने लिखा है कि यहां के बहुत से लोग शैवधर्मानुयायी थे।

गुणवर्मा नामक राजा ने यहां 5वीं सदी में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। गुणवर्मा बहुत धर्मात्मा तथा वैभवशाली राजा था। चीन के भिक्षुओं ने अपने सम्राट से प्रार्थना की थी कि वह गुणवर्मा को चीन आने का निमंत्रण दे। गुणवर्मा ने चीन को भेंट दी। वह दक्षिण-पूर्व एशिया में बहुत बड़ा धर्म प्रचारक था।

और भी अनेकानेक राजा हुए। जावा में संस्कृत भाषा में कई शिलालेख मिलते हैं।

शैलेन्द्र साम्राज्य

ईसा की सातवीं सदी में सुमात्रा के श्रीविजय नरेशों ने-जो शैलेन्द्रवंशी थे-जावा को अपने साम्राज्य के अंतर्गत कर लिया। साथ ही, दक्षिणी बर्मा, मलाया, और कम्बोडिया को भी अपने राज्य में मिला लिया। शैलेन्द्र बौद्ध धर्मावलम्बी थे। उन्होंने अपने क्षेत्र में बौद्ध धर्म का खूब प्रचार किया। फलतः, शैव और वैष्णव धर्म, दक्षिण एशियायी देश-जैसे ब्रह्मा, थाईलैंड, कम्बोडिया आदि-में कमजोर हो गया, उसका स्थान बौद्ध धर्म ने ले लिया। शैलेन्द्रों ने भारत से भी अपने संबंध बनाये रखे। उनके उत्कीर्ण लेख जावा, सुमात्रा, मलाया आदि प्रदेशों में उपलब्ध होते हैं।

इस वंश का इतिहास हमें क्रमबद्ध रूप से नहीं मिलता। किंतु हम जानते हैं कि राजराजेंद्र चोल से इनकी मुठभेड़ हुई थी। चोलों ने इनको कमजोर कर दिया था। किंतु, चोल राज्य के नाश में, शैलेन्द्रों ने भी योग दिया।

शैलेन्द्रों ने साहित्य तथा शिल्प-कला का बहुत विकास किया। इन्होंने अनेक देशों में, मन्दिर, स्तूप, चैत्य बनवाये। यहां तक कि नालन्दा में भी एक विहार बनवाया।

बाली

जावा के पास ही पूर्व की तरफ बाली नामक द्वीप में हिन्दू धर्म अभी भी जीवित है। बाली में हमें अनेक शिलालेख मिलते हैं, जो संस्कृत भाषा में लिखे हुए हैं।

बोर्नियो

ज्ञात होता है कि यहां सन् 400 के लगभग ब्राह्मण धर्म पूर्णतः विराजमान था। इस द्वीप में अनेक ध्वंसावशेष प्राप्त होते हैं। इनमें से एक गुफा मंदिर है जिसमें शिव, गणेश, नंदी, ब्रह्म, स्कन्ध, महाकाल, अगस्त्य, नन्दीश्वर आदि की 18 मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। यह गुफा तेलन नदी की ऊपरी धारा के पूर्व में स्थित है। इस द्वीप में चार शिलालेख भी मिले हैं, जो संस्कृत भाषा में हैं। इनसे प्रतीत होता है कि वहां यज्ञयाग का बड़ा प्रचार था। इसी प्रकार के अवशेष हमें सेलेवीज़ और फिलिपाइन्स में मिलते हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि भारतीय संस्कृति और धर्म का विस्तार पूरे दक्षिण-पूर्वी एशिया को समेट चुका था।

...क्रमशः जारी

साभार : मुक्तिबोध रचनावली, भाग 6

isd इंस्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी

फ्लैट नम्बर-110, नम्बरदार हाउस,

62-ए, लक्ष्मी मार्केट, मुनिरका, नई दिल्ली-110067

टेलीफोन 011-26177904, 46025219 टेलीफैक्स 011-26177904,

ईमेल : notowar.isd@gmail.com / notowar@rediffmail.com / वेबसाइट : isd.net.in

केवल सीमित वितरण के लिए